ऋग्वेदीय उपनिषद

लेखक

सुरेश चौधरी 'इंदु'

शुक्तिका प्रकाशन

ऋग्वेदीय उपनिषद

RIGVEDIYE UPNISHAD ***By*** **Suresh Choudhary 'Indu'**

ISBN : 978-81-998530-5-8

प्रकाशक :

शुक्तिका प्रकाशन

माइंडस्टार वेलनेस प्राइवेट लिमिटेड

24, हरिंगटन मेंशन

8, हो ची मिन्ह सारणी, कोलकाता-700071

email : ritzoff@gmail.com

मो. : +91 82409-61596

लेखक : **सुरेश चौधरी 'इंदु'**

© सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : 300/-

संस्करण : 2026

शब्द सज्जा : परमानंद झा, मो. : 95550-21641

मुद्रक : मिश्का इन्फोटेक, कोलकाता

अनुक्रमणिका

1.	प्राक्कथन	05
2.	उपनिषद - एक परिचय	07
3.	ऐतरिय उपनिषद - ऋग्वेद	19
4.	कौषीतकि उपनिषद् - ऋग्वेद	39
5.	कवि परिचय	143

प्राक्कथन

ऋग्वेदीय : वेद से वेदान्त तक

''**वेद से वेदान्त तक**'' शीर्षक के अंतर्गत पूर्व में प्रस्तुत ग्रंथ को अब वैदिक परंपरा की स्पष्टता और अध्ययन-सुविधा की दृष्टि से **चारों वेदों के अनुसार पृथक्** ग्रंथों में विभाजित किया गया है। यह पुस्तक उसी श्रृंखला का ऋग्वैदिक खंड है।

ऋग्वेद मानव चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति है। यहाँ देवताओं की स्तुति केवल बाह्य आराधना नहीं, बल्कि प्रकृति, जीवन और नैतिक व्यवस्था के प्रति मनुष्य की जिज्ञासा का काव्यात्मक रूप है। इसी जिज्ञासा का परिपक्व रूप उपनिषदों में आत्मचिंतन बनकर प्रकट होता है।

इस ग्रंथ में ऋग्वेद से संबद्ध प्रमुख उपनिषदों—**ऐतरेय उपनिषद** और **कौषीतकि उपनिषद**—को समाहित किया गया है। ऐतरेय उपनिषद सृष्टि की उत्पत्ति और चेतना के वैश्विक स्वरूप पर विचार करता है, जबकि कौषीतकि उपनिषद प्राण, कर्म और आत्मा के संबंध को स्पष्ट करते हुए आत्मबोध की दिशा में अग्रसर करता है।

यह पुस्तक ऋग्वेद को देव-स्तुति से आगे ले जाकर **वेदान्तिक आत्मदृष्टि** तक की यात्रा के रूप में प्रस्तुत करती है।

मुझे हर्ष हो रहा है कि ''**वेद से वेदांत तक**'' तक पुस्तक में **कौषितकी उपनिषद** छूट गया था, उसका **काव्यानुवाद**

नहीं हो पाया था उसे भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

उपनिषद के बारे में विस्तृत विवरण अलग खंड में दिया गया है। आशा है यह प्रयास सभी पाठकों को पसंद आएगा। आपकी प्रतिक्रिया मिलने से अगले संस्करण में त्रुटि सुधारने का प्रयत्न करूँगा।

आपका

—सुरेश चौधरी 'इंदु'

दिनांक : 15 दिसंबर, 2025

तिथि : पौष कृष्ण पक्ष एकादशी

उपनिषद : एक परिचय

हे प्राणदाता!
व्योम में व्याप्त शून्य की गंभीरता,
सागर की गहराई में समाई नीरवता,
समाहित करती-
धरा की सहनशीलता
ॐकार के त्रिगुणों से आभासित कर,
ब्रह्म है आत्म-चिंतन,
विष्णु; भौतिक संरक्षक
शिव; कल्याणकारी मोक्ष प्रदाता,
तीनों का प्रतिरूप ओम्,
समग्र रूप से ओम्-मय कर,
ब्रह्म का वैश्वानर
सम्पूर्ण कामनाओं को
परिपूर्ण करता तेजस रूप
ओकार!
संतति का उत्कर्ष,
ब्रह्म-ज्ञान का समर्पण
सब को सम्मानित करता
उकार!
भूत-भविष्य-वर्तमान से मुक्त
आदि-अंत-अनादि से परे प्राज्ञ ब्रह्म
मकार!
ॐकार-निर्भय ब्रह्म पद,
मेरे चित्त को इस प्रणव में,
समाहित कर।

उपनिषदों में ओम् शब्द को बहुत महत्व दिया गया है। कठोपनिषद् कहती है कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसकी साधना के लिए सारे तप किये जाते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; वह पद है ओम् यह अक्षर ही परब्रह्म है। यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है। इस अक्षर को ही 'यही उपास्य ब्रह्म है'-ऐसा जानकर जो स्त्री या पुरुष पर अथवा अपर; जिस ब्रह्म की इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है। यदि उसका उपास्य परब्रह्म हो तो वह केवल जाना जा सकता है और यदि अपर ब्रह्म हो तो प्राप्त किया जा सकता है। यही ॐकार रूप आलम्बन ब्रह्म प्राप्ति के लिए सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है। इस आलम्बन को जानकर साधक परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है तथा अपरब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्म के समान उपासनीय होता है। माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है इसलिए यह सब ॐकार ही है। इसके सिवा जो तीनों कालों से परे, अपने कार्य से ही विदित होने वाला और काल से अपरिच्छेद्य आदि है, वह भी ॐकार ही है। आत्मा और इसके पादों के साथ ॐकार और उसकी मात्राओं का तादात्म्य करते हुए कहा गया है कि वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ॐकार है एवं मात्राओं के साथ संयोग के कारण इसमें स्थैर्य है। पाद ही मात्रा हैं और मात्रा ही पाद हैं। वे मात्राएँ अकार, उकार और मकार हैं। ब्रह्म का वैश्वानर रूप पहली मात्रा अकार है। जो उपासक इसके गूढ़ अर्थ को समझ लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। तेजस ॐकार की द्वितीय मात्रा उकार है, जो उपासक इसके मूल अर्थ को ग्रहण करने की क्षमता रखता है, वह अपने ज्ञान एवं संतान का उत्कर्ष करता है। वह सबके प्रति समभाव रखता है और उसके वंश में कोई ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता। प्राज्ञ ब्रह्म ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, जो

उपासक इसे तदानुरूप ग्रहण करता है, वह इस सम्पूर्ण जगत् को माप लेता है अर्थात् इसका यथार्थ स्वरूप जान लेता है। अकार विश्व-प्राप्ति में सहायक है, उकार तेजस और मकार प्राज्ञ पर अधिपत्य का साधन है किन्तु अमात्र में किसी की गति नहीं होती। मात्रा रहित होकर ॐकार तुरीय आत्मा ही है, जो उसे इस प्रकार ग्रहण करता है, वह स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है। आप सभी चित्त को ॐकार में समाहित करें। यह निर्भय ब्रह्मपद है। ॐ में नित्य समाहित रहने वाले व्यक्ति को कभी किसी प्रकार का भय त्रस्त नहीं करता। प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है। प्रणव ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर है। इस प्रकार सर्वव्यापी ॐकार को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता। जिसने मात्राहीन, अनन्त मात्रा वाले शिवमय ॐकार को जाना है, वही मुनि है और कोई नहीं। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार प्रणव धनुष है एवं आत्मा बाण है। ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। उसका सावधानी से वेधन करना चाहिए और बाण को उसमें तन्मय हो जाना चाहिए अर्थात् ब्रह्म रूपी लक्ष्य से एकरूप हो जाना चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि हमें ॐ अक्षर की ही उपासना करनी चाहिए।

व्याकरण की दृष्टि से उपनिषद का शाब्दिक अर्थ उप+नि+सद है, जिसका अक्षरशः आशय इस प्रकार है। उप - निकट, नि-नीचे, सद-बैठना। प्राचीन वैदिक काल में उच्चासन पर पदस्थ गुरु के समीप भूमि पर आसीन होकर शिष्यों को जो श्रुति ज्ञान प्राप्त होता था, वह उपनिषद कहलाता था, इस प्रकार मूलतः उपनिषद लिखित ग्रन्थ न होकर श्रुति ग्रन्थ हैं। इसे वेदांत भी कहते हैं। वेदों में हर मंडल के पश्चात सार बताया जाता था, उसे ही उपनिषद में परिवर्तित किया गया। उपनिषद में मुख्य रूप से कर्म, ब्रह्म, आत्मा, जीवात्मा आदि पर ही परिचर्चा है। वैदिक काल में एक ब्रह्म को सर्व माना गया है एवं 24 देवों का

पूजन एवं कीर्ति वर्णन है। ये सभी देव प्रकृति जन्य हैं, (अग्नि, वायु, जल, सूर्य, पूषा......आदि)

कुछ परिस्थितियों में यह पति-पत्नी के बीच तो कहीं पिता पुत्र के बीच एवं कठोपनिषद में यह तरुण युवक एवं यम के बीच का वार्तालाप है। कहीं अध्यापक नारी रूप में हैं एवं छात्र स्वयं राजा हैं। वार्ताओं के अलावा उपनिषद में उद्धरण, दृष्टांत, दृष्टव्य, रूपक भी दिए गए हैं।

गुफाओं में, आश्रम में, गंगा तट पर, सदियों से यह ज्ञान बाँटा जा रहा है। यह कह सकते हैं कि उपनिषद, श्रोत्रिय ज्ञान का अद्भुत लिपिबद्ध संकलन है।

ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत् प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत्, तैत्तिरीयोपनिषत्, इन नौ मुख्य उपनिषदों का रूपांतर इस पुस्तक में दिया गया है।

अधिकांश उपनिषदों में या तो यह चार वेदों का विस्तारण है या व्यक्तव्य वेदांत के रूप में दिया गया है। उपनिषदों की विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूपेण ब्रह्माण्ड में समाहित है एवं कट्टरवाद से परे है। उपनिषद सैद्धांतिक रूप से शून्य एवं शांति को प्राप्त करने का द्वार है। यह वैदिक संस्कृति का मेरुदंड है। मूलतः भारतीय दर्शन का भाव-विस्तरण करता यह ग्रन्थ कर्म, योग, पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान, प्राण को परिभाषित करता है। उपनिषद, सृष्टि की रचना उत्पत्ति के कारण एवं इसमें स्थित तत्व के विश्वास को दर्शाता है।

पाश्चात्य शोधकर्मियों के अनुसार उपनिषद ईसा से 800-400 वर्ष पूर्व लिखे गए हैं। बाल गंगाधर तिलक के शोध के अनुसार ये 6000 से 800 वर्ष ईसा से पूर्व लिखे गए हैं।

यूँ तो 250 से ऊपर उपनिषदों का वर्णन है लेकिन अब तक 108 उपनिषदों का अस्तित्व ज्ञात हैं। इनमें से 12 मुख्य उपनिषद कहे गए

हैं। ये हैं - ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत्, प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत् तैत्तिरीयोपनिषत्, छान्दोग्योप्निशत्, बृहद अरण्यकोपनिषद मैतिरियानी।

वेद	सह् वेद	शाखा	उपनिषद
ऋग वेद	केवल एक	शकल	ऐतेरिय
साम वेद	केवल एक	कौथुमा	छान्दोग्य
		जैमिनीय	केन
		रणनिया	
यजुर वेद	कृष्ण यजुर्वेद	कथा	कथा
		तैत्तिरीय	तैत्तिरीय, श्वेतास्वातर
		मैतिरियानी	मैतिरियानी
		हिरान्याकेशी	
		कथाका	
	शुक्ल यजुर वेद	वाजसनेयी	ईशा, बृहद आरण्यक
		काँव शाखा	
अथर्व वेद	दो	शौनक	माण्डुक्य, मुण्डक
		पीपलाद प्रश्न	

108 उपिनषदों की यह सूची मुक्तिक उपनिषद में 1:30-39 में दी गयी है:-

ईश = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् केन = सामवेद, मुख्य उपनिषद् कठ उपनिषद्= कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् प्रश्न = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् मुण्डक = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् माण्डुक्य = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् तैतरीय = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ऐतरेय = ऋग् वेद, मुख्य उपनिषद् छान्दोग्य= साम वेद, मुख्य

उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद (10)= शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपिनषद् कैवल्य = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् जाबाल (यजुर्वेद) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् श्वेताश्वतर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् हंस = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् आरुणेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् गर्भ = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् नारायण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् परमहंस = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् अमृत-बिन्दु (20) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अमृत-नाद = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अथर्व-शिर = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् अथर्व-शिख = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् मैत्रायिण = साम वेद, सामान्य उपनिषद् कौषीताक = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् बृहज्जाबाल = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् नृसिंहतापनी= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कालाग्निरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् मैत्रेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सुबाल (30) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् क्षुरिक = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् मान्त्रिक = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् सर्व-सार = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् निरालम्ब = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् शुक-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् वज्र-सिचू = साम वेद, सामान्य उपनिषद् तेजो-बिन्दु= कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् नाद-बिन्दु = ऋग् वेद, योग उपनिषद् ध्यानिबन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् ब्रह्मविद्या (40) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् योगतत्व= कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् आत्मबोध = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् परिव्रात् (नारदपरिव्राजक) = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् त्रि-षिख = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् सीता = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् योगचूडामिण = साम वेद, योग उपनिषद् निर्वाण = ऋग् वेद, संन्यास उपनिषद् मण्डलब्राह्मण = शुक्ल यजुर्वेद, उपनिषद् दक्षिणामूर्ति =

कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् शरभ (50) = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् स्कन्द (त्रपाड्विभूटि) = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् महानारायण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् अद्वयतारक= शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् रामरहस्य = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् रामतापिण= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् वासुदेव = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् मुद्गल = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् शाण्डिल्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पैंगल = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् भिक्षुक (60) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् महत् = साम वेद, सामान्य उपनिषद् शारीरक = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् योगिशखा = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् तुरीयातीत= शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् संन्यास = साम वेद, संन्यास उपनिषद् परमहंस-परिव्राजक = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अक्षमालिक = ऋग् वेद, शैव पिनषद् अव्यक्त = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् एकाक्षर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अन्नपूर्ण (70) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् सूर्य = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् अक्षि = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अध्यात्मा= शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् कुण्डिक = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सावित्री = साम वेद, सामान्य उपनिषद् आत्मा = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् पाशुपत = अथर्व वेद, योग उपनिषद् परब्रह्म = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अवधूत = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् त्रिपुरातपिन (80) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् देवि = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् त्रिपुर = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् कठरुद्र= कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् भावन = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् रूद्र-हृदय = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् योग-कुण्डिलिन = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् भस्म = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् रुद्राक्ष = साम वेद, शैव उपनिषद् गणपित = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् दर्शन (90) = साम वेद, योग उपनिषद् तारसार = शुक्ल

यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् महावाक्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पञ्च-ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् प्राणाग्नि-होत्र = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् गोपाल-तपिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कृष्ण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् याज्ञवल्क्य = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् वराह = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् शात्यायिन = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् हयग्रीव (100) = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् दत्तात्रेय= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् गारुड = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् किल-सण्टारण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् जाबाल (सामवेद) = साम वेद, शैव उपनिषद् सौभाग्य = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् सरस्वती-रहस्य= कृष्ण यजुर्वेद, शाक्त उपनिषद् बृह्वच = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् मुक्तिक (108) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद्।

ऋषि याग्ख्वाल्कि, उद्दल्का, ऐतिरिय, पिप्लाद, सनत कुमार, श्वेतकेतु, शांडिल्य, मनु, महर्षि नारद ने उप्निशादाक्य ज्ञान बाँटा है। जीव की विचार-क्षमता का आधार उपनिषद है। जो ज्ञान, विचार, सोच उपनिषद में है वह अन्य कहीं हो ही नहीं सकता। सभ्यता के आरंभिक दिनों में लिखा गया ग्रंथ विश्व के प्रत्येक देश, जाति, धर्म में उत्सुकता जगाता है।

उपनिषद के कुछ महत्वपूर्ण कथ्य उद्धृत हैं :-

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय। ॐ शांति शांति शांतिः॥
अतिथि देवो भवः
सत्यमेव जयते

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार मेघगर्जना रूपी दैवी वाक् कामी, क्रोधी और लोभी स्वभाव वालों के लिए एक ही संदेश देती है। कामी व्यक्ति के लिए दमन का सन्देश है क्योंकि उसमें इन्द्रिय लोलुपता होती

है। क्रोधी और उद्दण्ड व्यक्ति के लिए दया का सन्देश है क्योंकि वह क्रूर होता है। लोभी व्यक्ति के लिए दान का सन्देश है क्योंकि दान करने से धनलोलुपता नहीं रह जाती। केन उपनिषद् में देवी-देवताओं तक को अभिमान न करने की चेतावनी दी गयी है क्योंकि उनकी शक्ति और उनका तेज घट जाने की सम्भावना होती है। वस्तुतः ब्रह्म की शक्ति और ब्रह्म का तेज ही है। कठ उपनिषद् के अनुसार इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं। विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से महान् आत्मा उत्कृष्ट है। आत्मा से मूल प्रकृति (अव्यक्त) श्रेष्ठ है और अव्यक्त से भी परब्रह्म श्रेष्ठ है। परब्रह्म से परे कुछ भी नहीं है, वही परम गति है। सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशवान् नहीं होता। यह सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्मबुद्धि से ही देखा जाता है। विवेकी पुरुष वाक् इन्द्रिय (वाणी) का मन में उपसंहार करे, मन का प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करे, बुद्धि को महत्व में लीन करे और महान् आत्मा को मुख्य आत्मा में नियुक्त करे। अरे अविद्याग्रस्त लोगों! उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छूरे की धार तीक्ष्ण एवं दुष्कर होती है, तत्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

वेदों के अन्तिम भाग या उच्चतम दर्शन को वेदान्त या उपनिषद् कहा जाता है। अब वेदान्त शब्द का प्रयोग उस विशेष दर्शन के लिए भी होता है जो उपनिषदों पर आधारित है। शंकर 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति 'सद्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है मुक्त करना, पहुँचना या नष्ट करना। यह एक विशेष्य है जिसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग और क्विप् प्रत्यय लगे हैं। इसके अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है ब्रह्मज्ञान,

जिसके द्वारा अज्ञान से मुक्ति मिलती है। जिन ग्रन्थों में ब्रह्मज्ञान की चर्चा रहती है, वे उपनिषद् कहलाते हैं। उपनिषदों में आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं दार्शनिक तर्क प्रणाली दोनों के दर्शन होते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार परमेश्वर वेदों के गुह्य भाग उपनिषदों में निहित है (तद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढ़ं)। उपनिषद् ऐसा साहित्य है जो आदिकाल से विकसित हो रहा है। भारतीय परम्परा में उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ मानी गयी है। शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहद् आरण्यक और श्वेताश्वतर - इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है और ये ही सर्वसुलभ हैं।

वेद का एक भाग होने से उपनिषदों का सम्बन्ध श्रुति या प्रकट हुए साहित्य से है। ये सनातन कालातीत हैं। अन्तःप्रेरित ऋषि यह घोषणा करते हैं कि जिस ज्ञान को वे प्रदान कर रहे हैं, उसका उन्होंने स्वयं आविष्कार नहीं किया है। वह उनके आगे बिना उनके प्रयत्न के प्रकट हुआ है (पुरुष प्रयत्नं बिना प्रकटीभूत)। उपनिषद् प्रतीक शैली का प्रयोग करते हुए, दिव्य दर्शन को हमारे ऊपर छोड़ा गया ईश्वर का निश्वास कहते हैं (मुण्डक 2-1-6)। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि ऋषि श्वेताश्वतर ने अपने तप के प्रभाव और ईश्वर की कृपा से सत्य का दर्शन किया। उपनिषदें व्यवस्थित चिन्तन से अधिक आत्मिक आलोक की साधन हैं। इनमें हमें आध्यात्मिक जीवन का वर्णन मिलता है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य में सदा एक सा है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदों की शिक्षा का संक्षिप्त सार है। वेदान्त के महान आचार्यों ने इस ग्रन्थ पर भाष्य रचकर उनसे अपने-अपने विशिष्ट मत विकसित किये हैं।

19 उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ पूर्णमदः से आरम्भ होता है।

32 उपिनषद कृष्ण यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ सहनाववतु से आरम्भ होता है।

16 उपनिषद् सामवेद से हैं और उनका शान्तिपाठ आप्यायन्तु से आरम्भ होता है।

31 उपनिषद् अथर्ववेद से हैं और उनका शान्तिपाठ भद्रं कर्णेभिः से आरम्भ होता है।

10 उपनिषद् ऋग्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ वण्मे मनिस से आरम्भ होता है।

जल में स्पंदन
करता तरंगों का सृजन
आत्मा होती सरिता सम
निर्मल मृदु मृदु अनवरत
सरिता का मिलन-समर्पण सागर से
अंतिम बंध है,
ज्यूँ अबाध जीवन मलय की गति
उपवन की सुरभित सुगंध है।
उर तो शांत जलाशय
क्यों है तरंगित
कामना की भावना से है अस्थिर
आशा की कौन सी अभिलाषा
कर गयी आत्म-मंथन से परिचित
अंतर्मन का आत्मा से मिलन।
समकालीन जीवन व्यवस्था है
मन एवं तन नहीं आधार अस्तित्व के
अस्तित्व तो अवस्था है; स्थिर चेतन आत्मा की
शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, आनंद-रूप आत्मा
अहैतुक, भौतिक गुणों से परे होती आत्मा,
तन के रथ पर शोभित

चंचल मन को संचालित करती रथवान सी आत्मा।
आत्मा होती अंतस प्रकाश मानव की
चिर परिचित प्राणों के स्पंदन की
अपने ही सुख से चिर चंचल मन की
शांत उर सरोवर की विचलित आत्मा,
परमात्मा-रूपी सागर में विलय को आतुर
जीवन सरिता आत्मा
मनुज है असत्य
मानव अस्तित्व है ब्रह्म
ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा।

—सुरेश चौधरी 'इंदु'

(स्त्रोत : निज शोध एवं विभिन्न गूगल स्थित लेख)

ऐतरिय उपनिषद

ऋग्वेद

ऐतरिय उपनिषद - परिचय

1. ग्रंथ-परिचय

ऐतरिय उपनिषद ऋग्वेद की परंपरा से सम्बद्ध उपनिषद है। यह **ऐतरिय आरण्यक** (तृतीय आरण्यक) का भाग है और इसे प्राचीनतम उपनिषदों में गिना जाता है। इसकी रचना का काल सामान्यतः ईसा-पूर्व 7वीं-6वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। परंपरा में इसका श्रेय महर्षि **ऐतरिय** को दिया जाता है, जो ऋग्वैदिक ब्राह्मण-आरण्यक परंपरा के महत्त्वपूर्ण आचार्य माने जाते हैं।

यह उपनिषद आकार में छोटा (तीन अध्याय/खंड) है, परंतु विचार-गहनता में अत्यंत व्यापक है। इसकी भाषा सरल, प्रत्यक्ष और कथात्मक है—जो इसे दार्शनिक जटिलताओं के बावजूद बोधगम्य बनाती है।

2. रचना-संरचना

ऐतरिय उपनिषद के तीन अध्याय हैं—

1. **प्रथम अध्याय** : सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन
2. **द्वितीय अध्याय** : जीव और प्राण का रहस्य
3. **तृतीय अध्याय** : आत्मा/ब्रह्म का निर्णायक निष्कर्ष

इन तीनों अध्यायों में क्रमशः **सृष्टि - जीव -** आत्मबोध की तार्किक यात्रा दिखाई देती है।

3. प्रमुख दार्शनिक तत्त्व

(क) सृष्टि की अवधारणा

उपनिषद का आरंभ अत्यंत मौलिक उद्घोष से होता है—

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।"

अर्थात सृष्टि के आरंभ में केवल **आत्मा/चेतना** ही थी। यही आत्मा स्वयं से ही जगत, देवता, इंद्रियाँ और प्राणी की रचना करती है।

यहाँ सृष्टि को किसी बाह्य ईश्वर-इच्छा का परिणाम न मानकर

चेतना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति बताया गया है।

(ख) पुरुष और इंद्रियाँ

उपनिषद बताता है कि सृष्टि के पश्चात इंद्रियाँ उत्पन्न हुई, परंतु वे निष्क्रिय रहीं। आत्मा जब पुरुष में प्रवेश करती है, तभी इंद्रियाँ क्रियाशील होती हैं।

यह विचार स्पष्ट करता है कि **शरीर और इंद्रियाँ साधन हैं, स्वामी नहीं।**

(ग) ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' – केंद्रीय महावाक्य

ऐतरिय उपनिषद का सबसे प्रसिद्ध और निर्णायक वाक्य है–

प्रज्ञानं ब्रह्म।

अर्थात **चेतना ही ब्रह्म है।**

यहाँ ब्रह्म को किसी दूरस्थ, अलौकिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि **मानव के भीतर विद्यमान जागरूक चेतना** के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

4. आत्मा की अवधारणा

इस उपनिषद में आत्मा को–

- जन्म-रहित
- देह से भिन्न
- चेतना-स्वरूप
- सर्वव्यापक

बताया गया है। आत्मा ही देखती है, सुनती है, सोचती है–इंद्रियाँ केवल माध्यम हैं।

यह दृष्टि आगे चलकर **अद्वैत वेदांत** की ठोस आधारभूमि बनती है।

5. ऐतरिय उपनिषद और अद्वैत

दार्शनिक दृष्टि से ऐतरिय उपनिषद **स्पष्ट रूप से अद्वैत का पोषक है–**

- ब्रह्म और आत्मा में कोई द्वैत नहीं
- सृष्टि चेतना की अभिव्यक्ति है
- जीव की मुक्ति का मार्ग **ज्ञान (प्रज्ञान)** है, न कि कर्मकांड

आदि शंकराचार्य ने अपने भाष्य में इसे अद्वैत सिद्धांत के प्रारंभिक, परंतु सुदृढ़ स्रोतों में गिना है।

6. कर्मकांड से ज्ञान की ओर

यह उपनिषद वैदिक कर्मकांड परंपरा से आगे बढ़कर स्पष्ट संकेत देता है कि–

- यज्ञ, देवता, कर्म सब साधन हैं
- अंतिम लक्ष्य **आत्मबोध** है
- जब तक प्रज्ञान नहीं, तब तक मुक्ति नहीं

यह संक्रमण भारतीय दर्शन के इतिहास में अत्यंत निर्णायक माना जाता है।

7. साहित्यिक और दार्शनिक मूल्यांकन

साहित्यिक दृष्टि से

- भाषा संक्षिप्त, किंतु अर्थ-गहन
- प्रतीकात्मक कथन, पर बोझिल नहीं
- गद्य में भी काव्यात्मक प्रवाह

दार्शनिक दृष्टि से

- चेतना-केंद्रित दर्शन
- मनुष्य को ब्रह्म से पृथक नहीं, उसका साक्षात रूप मानना
- आत्मा को अनुभव-सिद्ध सत्य के रूप में प्रस्तुत करना

8. सीमाएँ और आलोचनात्मक दृष्टि

- अत्यधिक संक्षिप्तता के कारण नवपाठकों को अर्थ-ग्रहण में कठिनाई
- सामाजिक-नैतिक प्रश्नों पर प्रत्यक्ष चर्चा नहीं

- साधना-पद्धति की व्यावहारिक विधि अपेक्षाकृत कम

परंतु ये सीमाएँ इसे कमज़ोर नहीं, बल्कि **सूत्रात्मक महानता** प्रदान करती हैं।

9. समग्र निष्कर्ष

ऐतरिय उपनिषद भारतीय दर्शन की वह कड़ी है जहाँ–

- देवताओं से आगे **मनुष्य की चेतना** केंद्र में आती है
- ईश्वर बाहर नहीं, **भीतर खोजा जाता है**
- मुक्ति किसी लोक में नहीं, **यहीं-बोध में** है

संक्षेप में, यह उपनिषद यह सिखाता है कि–

मनुष्य का वास्तविक अस्तित्व उसकी सोच नहीं, उसकी चेतना है– और वही ब्रह्म है।

शांति पाठ

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि
प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा
प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि॥
तन्मामवतु तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥
ॐ शांतिः। शांतिः। शांतिः॥

हे स्वामी!
मेरी वाणी मन में स्थित हो और मन वाणी में,
अर्थात सत्य से बढ़कर मन एवं वाणी एकाकार हों,
तेज़ रूप हैं नाथ आप,
मेरे लिए प्रकट होवें आप,
ओ! मेरे मन वाणी द्वारा मुझे वेद ज्ञान दिलाओ,
मिलकर संभल कर तो यह गया मन छोड़े न,
ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में दिन रात भूल चुका,
सर्वदा सत्य की वृद्धि हो, श्रेष्ठ ही बोलूँ
हे गुरुवर प्रभु रक्षक बन रहो॥
ॐ शांतिः! शांतिः! शांतिः!!

प्रथम अध्याय : प्रथम खंड

मन्त्रः1-2

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥1॥
स इमाँ ल्लोकानसृजत।
अम्भो मरीचीर्मापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः
प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः॥
पृथिवी मरो या अधस्तात्त आपः ॥2॥

हे नाथ!
अकेले आप ही हुए प्रकट
अबसे पहले जब जग बना
कोई अन्य था नहीं जब जग आपने रचा।
भिन्न भिन्न लोक,
द्युलोक रचने के बाद ऊपर के लोक अम्भ को रचा
सूर्य रचा तारे रचे चन्द्र रचा
और रचे मरीचि नामक अंतरिक्ष,
मर नाम मृत्यु लोक, पाताल रचा,
फिर रचे जग के सारे मनुष्य॥

मन्त्रः3-4

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति॥
सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥3॥
तम यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डं
मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतं नासिकाभ्यां प्राणः॥
प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतमक्षीज़्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः

कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाज़्यां श्रोत्रं श्रोत्रद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत
त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधि वनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत
हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या
अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥4॥

हे नाथ!
लोकों की रचना के बाद
किया आपने एक और काम,
रक्षा हेतु लोकपाल बनाए,
हिरण्यमय पुरुष को जल से निकाल साकार किया,
सर्वप्रथम ब्रह्मा ने जल में पुरुष निर्माण किया।
हिरण्यमय पुरुष ने किया संकल्प
आपने संकल्प से किया विकल्प,
मुख बनाया, मुख से बनाई वाणी,
अग्नि देव हुए प्रकट वाणी से
नासिका प्रकट हुई तत्पश्चात
नासिका से प्राण, प्राण से वायु हुई प्रकट,
दो नेत्र बने चक्षु देव बने, उनसे बने सूर्यदेव,
दो कर्ण छिद्र हुए, उनसे हुए कर्ण रूपी इन्द्रियाँ
श्रोत्र के साधन बने सर्व दिशा की ओर
त्वचा बनी फिर रोम रोम बने उनसे प्रकट हुई
औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ
हृदय बनाया आपने उस से उत्पत्ति मन की मन से चन्द्र
नाभि निर्माण हुआ, अपान वायु प्रमाण हुआ,
प्रकट उस से हुए मृत्यु देव,
तदुपरांत लिंग का किया निर्माण,
लिंग से वीर्य, वीर्य से जल,
इस प्रकार पुरुष से अनेक रूप रचना हुई॥

द्वितीय खंड

मन्त्रः1-3

मनुष्य देह की रचना

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतन्।
तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत्।
ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥1॥
ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥2॥
ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ॥3॥

हे जगत्पति!
आपने देवों को रच भाव सिन्धु में भेजा,
तब देवों ने आपसे माँगा
एक स्थान जहाँ वे बसें एवं आहार विहार करें।
तब गौ माता बनाई आपने,
देव और बोले तब अश्व बनाया,
देव फिर भी न खुश हुए
कहें ये हमारे योग्य प्राणी नहीं।
तब आपने मनुष्य शरीर निर्मित किया,
देव प्रसन्न हुए कहा अति मनोहर यह,
मनुज देह आपकी सर्वोत्कृष्ट उत्पत्ति है,
इस काया में सब देव निज निज स्थान विराजित हैं॥

मन्त्रः4-5

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा
नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशाद्दिशः
श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधि वनस्पतयो लोमानि
भूत्वा त्वचंप्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्यु
रपानो नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥4 ॥
भूत्वा तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति ते
अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्न्यौ करोमीति।
तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते
भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥5 ॥

हे स्वामी!
अग्निदेव मुख एवं वाणी में प्रवेशित हुए,
वायुदेव प्राण बन नासिका में जा बसे,
सूर्य देव नेत्र रूप दृग कोपल में बसे,
दिशाएँ श्रोत्र बन कर्ण में जा बसी।
औषधि देव रोम रोम में बस त्वचा में निवास किये
चन्द्र मन में, मृत्यु अपान वायु में हो नाभि में,
जल देव वीर्य होते हुए लिंग में वास करने लगे।
भूख बन आप स्वयं स्थान ग्रहण करें
सब देवों का आहार आप ही हैं,
देवों को अधिकाधिक भाग दे आपने कृतार्थ किया,
सृष्टि रच आप बोले
भूख प्यास इन्द्रियों के भोग के संग जो रहे
इन्द्रिय देव तृप्त रहें,
भूख प्यास तृप्त रहें॥

तृतीय खंड

अन्न की रचना

श्लोकः1-3

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥1 ॥
सोऽपोऽभ्यतपत्ताज़्योऽभितप्ताज़्यो मूर्तिरजायत।
या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥2 ॥
तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाऽजिघृक्षत्
तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्
स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥3 ॥

हे स्वामी!
आपने बहुत विचार कर लोकपाल की रचना की,
भूख प्यास अन्न की रचना की।
पंचभूत संकल्प की क्रिया उत्पन्न करने के पश्चात,
क्रियाशील के पंचभूत का स्थूल रूप मूर्ति बनाई,
इन पंचभूत को अन्न नाम दिया,
देव भोग्य अन्न बना,
जिसे लोग अन्न कहें।
अन्न उत्पन्न होते ही मनुष्य के नास में लगा,
इसने माना मनुष्य के पास यह तुच्छ है,
पुरुष ने इसे वाणी से ग्रहण करने का
निष्फल प्रयत्न किया
वाणी से तो बस
अन्न नाम लेकर ही तृप्त हुआ जा सकता है॥

श्लोकः4-6

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स
यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥4 ॥

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतु
न् स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवानमत्रप्स्यत् ॥5 ॥
तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स
यद्धैनच्छ्रोतेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥6 ॥

हे नाथ!
प्रयत्न किया नासिका से ग्रहण का तदुपरांत,
असफल हो हस्त द्वारा पकड़ा इसे,
नासिका से करता ग्रहण
तो बस सुगंध लेकर ही होता तृप्त।
हे दयानिधि!
तत्पश्चात आपने पकड़ने हेतु भेजा,
परन्तु न पकड़ सके,
पकड़ाया तो बस तृप्ति हेतु।
कर्ण द्वारा अन्न ग्रहण करना चाहा,
असफल रहा,
सुनने मात्र से तो तृप्ति नहीं होगी।

श्लोकः7-9

तत्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्वचा ग्रहीतुं स
यद्धैनत्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥7 ॥
तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं स
यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥8 ॥
तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स
यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्वित्सृज्य हैवानमत्रप्स्यत् ॥9 ॥

हे देव!
त्वचा से भी किया प्रयास
पर न हुई पूरी आस

स्पर्श से तो न बनेगी बात
अन्न को तो ग्रहण करना होगा।
मन से भी ग्रहण करना चाहा
कर न सका
मात्र चिंतन से तो क्षुधा न होगी समाप्त।
लिंग द्वारा भी चाहा की ग्रहण अन्न करूँ
संतृप्त बनूँ जग सारा त्याग कर
अपान से भी की कोशिश पर न कर सका ग्रहण
अपान वायु की सहायता से
मनुष्य ने मुख में धारण किया
यही सफल उद्यम हुआ
जीवन रक्षक सर्व हित है,
अंश प्राण वायु का है॥

श्लोकः10-12

परमात्मा का देह प्रवेश

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो
यद्वायुरनायुवार् एष यद्वायुः ॥10॥
स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति।
स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं
यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा
ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥11॥
स एतमेव सीमानं विदर्यैतया द्वारा प्रापद्यत।
सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नाऽन्दनम्।
तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना
अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥12॥

हे प्रभु!
विचार कर इस विधि
रची आपने सृष्टि
पर सोच यह की आपके बिना
जग में कैसे हो तुष्टि?
आपके सहयोग बिना कैसे चले काम
आपके बिना जीवन तो अर्थ हीन
वाणी से बोल लेंगे, नैनों से देख लेंगे,
नासिका से सूँघ लेंगे, कान से सुन लेंगे
त्वचा से स्पर्श, मन से चिंतन,
अपान से अन्नग्रहण, लिंग से त्याग
करना सीख लिया फिर क्यों आप,
आप बिना कुछ नहीं रहेगा
अतः पग से मार्गदर्शन करें।
यह सोच हे ब्रह्म आपने देह चीर किया प्रवेश,
मनुष्य की सजीव देह में इस विधि किया वेश
विदीर्ण किया अतः विद्वातिद्वर कहाए
ब्रह्म प्राप्ति से ब्रह्म द्वार कहाए
तीन स्थान आपके,
तीन स्वप्न आपके,
तीन सर्व मणि से ये
प्रथम स्थान हृदय, द्वितीय परम धाम
ब्रह्माण्ड तीसरा प्रभु लूँ आपका नाम
स्थूल सूक्ष्म के कारण
तीन दशा स्वप्न रूप धर आप आओ॥

मंत्रः13-14

स जातो भूतान्यभिव्यै यत् किमिहान्यं वावदिषदिति।
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्।
इदमदर्शनमिती ॥13॥
तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम।
तमिदन्द्रं सन्तमिंद्र इत्याचक्षते परोक्षेण।
परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥14॥

हे स्वामी!
हमने बहुत अचरज से जगत की रचना देखी
आस पास की सृष्टि देखी
जानता हूँ,
आप के सिवा कोई नहीं
जग रचियता
अंतर भी देखा कौन करता कौन भरता
जो जग में व्यापक है वही ईश्वर आप हो
देखा प्रभु आपको परम रस में डूब डूब देखा
भाग्यवान हूँ मैं, चिंता विहीन हुआ
देख देख आपको परमानन्द में डूबा
सत्य देख देव सब छुप गए
देव छुप कर प्रकट करें सत्य सदा
इदं में दर मिल इंद्र बने
आप इस भांति पुरुषों में बसे॥

द्वितीय अध्याय

श्लोकः1-3

तीन जन्म

ॐ पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः
तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवऽऽत्मानं बिभर्ति
तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥1॥
तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा।
तस्मादेनां न हिनस्ति। साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥2॥
सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्री गर्भ बिभर्ति।
सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति।
स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव
तद्भावयत्येषं लोकानां सन्तत्या।
एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥3॥

हे परम पिता!
जीव सर्व प्रथम प्रकट होता
पुरुष के वीर्य रूप में,
यह तो है सब अंगों के तेज फलस्वरूप,
मानव देह का धारण यहीं से होता
स्त्री गर्भ में निरुपित हो यह जन्मता।
स्त्री मात्र को वीर्य आत्मामय बनाता
स्त्री के अन्य अंग का निर्माण भी होता वीर्य से,
स्त्री दर्द सह्कर भी पालती पोसती है,
पति के आत्मस्वरूप वीर्य को अपने भ्रूण में।
गर्भवती स्त्री का पालन पोषण सब करें,
गर्भकाल में सब उसे संभाल करें,

प्रसव काल तक स्त्री का देह गर्भ में रहे,
जन्म पश्चात
पिता का कर्तव्य की बालक की रक्षा करे॥

<u>मंत्रः4-6</u>

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते।
अथास्यायामितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति।
स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म॥4॥
तदुक्तमृषिणा गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच॥5॥
स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्॥6॥

हे देव!
पालन पोषण एवं विविध संस्कार पिता ही करे,
बालपन में उन्नति का उन्नत विकास करे,
बालरूप से इस प्रकार प्रथम जन्म हुआ तो
दूसरा क्या है?
प्रभो बताएँ आप
पुत्र रूप में उत्पन्न बालक पिता की होता आत्मा,
पिता भी प्रतिनिधि रूप में सब कार्य करता,
जग सारा पिता पुत्र व्यवहार सौंपते,
पितृ ऋण से छूट जाये कैसे?
पिता पूर्ण आयु प्राप्त कर जाते जब
कर्म करते जन्म धरते इस प्रकार पाते तीसरा जन्म।
वामदेव ऋषि इस भांति कहें इस बात को,
गर्भ में ही प्राप्त हो ज्ञान ज्ञात हो,

अनेक जन्म देवों ने गर्भ में ही जाने
इन्द्रियरूप देव ने गर्भ में ही माने,
हज़ार लोह की देह जकड़ रखी पहले ही,
तोड़ जिसे मुक्त होते सभी,
ज्ञान प्राप्त करते
वामदेव ऋषि मात गर्भ से बोलते
शरीर को अपना मान दुःख सहते।
इस प्रकार वामदेव ने जन्म रहस्य कहा,
आत्मा तो नहीं देह ही जन्मति कहा,
देह छूटे जग छूटे,
कामना पूर्ण हो उस धाम गतमान हों,
सर्व कामना अमृत रूपी ही हो॥

तृतीय अध्याय

श्लोकः1-4

आत्मा कौन है

ॐ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा।
येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा
गंधानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा
स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥1॥
यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्।
संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिधृर्तिमतिर्मनीषा
जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति।
सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवंति ॥2॥
एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा
इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश
आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव।
बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि
च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा
हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च
यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने
प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥3॥
स एतेन प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥4॥

हे नाथ!
आत्म-रहस्य बतायें आप,
कौन है आत्मा, आती कहाँ से जाती कहाँ
जीवात्मा बसी आपकी देह में,

जो सुनती है, संभालती है, सूँघती है,
बोलती है, स्वाद अस्वाद स्पष्ट करती है,
प्रभु इस आत्मा का रूप क्या है?
हृदय से तीव्र मन है,
मन से देह है, जिसमें है,
शक्ति, ज्ञान शक्ति, शाशन शक्ति, पहचान शक्ति,
पदार्थों को जानने की शक्ति, विचार शक्ति,
मनन शक्ति, धैर्य शक्ति
चंचल वेगवान स्मरण संकल्प शक्ति,
मनोरथ, प्राण कामना, स्त्री इच्छा शक्ति,
सर्व शक्तिमान सामर्थ्यवान मन की प्रभु नाम शक्ति,
ज्ञान रूप प्रभु शक्ति के ही लक्षण हैं।
ब्रह्म हैं, उससे इंद्र, उससे प्रजापति,
फिर सारे देव, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी,
अंदाज, स्वेदज, उद्राज, घोड़ा, गाय आदि,
पुरुष से बनी दुनिया,
स्थावर, जंगम, पंखोंवाले प्राणी भी जग में,
आपकी कृपा से सब समर्थ हैं,
ब्रह्माण्ड के ब्रह्म की ज्ञान शक्तियां
परम ज्ञान मय आप ही हो।
इस प्रकार ज्ञान मैंने किया प्राप्त,
जब देह छूटे,
परमधाम जाऊँ सदा,
दिव्य भोग पा कर अमृतमय होऊँ सदा॥

कौषीतकि उपनिषद्

विस्तृत परिचय

कौशितकी उपनिषद **ऋग्वेद** में निहित एक प्राचीन संस्कृत ग्रंथ है। यह कौशितकी **शाखा** से संबंधित है, लेकिन एक **सामान्य** उपनिषद है, जिसका अर्थ है कि यह **वेदांत के सभी संप्रदायों के लिए 'सामान्य' है। इसे रॉबर्ट ह्यूम की** 13 प्रमुख उपनिषदों की सूची में शामिल किया गया था और 108 उपनिषदों के **मुक्तिका** संग्रह में इसे 25वें स्थान पर रखा गया है।

कौशितकी उपनिषद, जिसे कौशीतकी ब्राह्मण उपनिषद के नाम से भी जाना जाता है, **कौशीतकी आरण्यक** या शांखायन आरण्यक का हिस्सा है। कौशीतकी आरण्यक में 15 अध्याय हैं और इनमें से चार अध्याय कौशीतकी उपनिषद का निर्माण करते हैं।

कालक्रम

कौशितकी उपनिषद की कालानुक्रमिक व्यवस्था अन्य उपनिषदों की तरह स्पष्ट नहीं है। यह पुरातनता, शैली और ग्रंथों में पुनरावृत्ति के विश्लेषण पर आधारित है, जो विचारों के संभावित विकास के बारे में मान्यताओं और इस धारणा पर आधारित है कि किस दर्शन ने अन्य भारतीय दर्शनों को प्रभावित किया होगा।

कौशितकी उपनिषद की रचना संभवतः ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी के मध्य से पहले हुई थी। **रानाडे** कौशितकी उपनिषद को प्राचीन उपनिषदों के तीसरे समूह में रखते हैं, जिसकी रचना ऐतरेय और तैत्तिरीय उपनिषदों के समय के आसपास हुई थी। **जुआन मस्कारो** का मत है कि कौशितकी उपनिषद की रचना संभवतः बृहदारण्यक, छंदोग्य और तैत्तिरीय उपनिषदों के बाद, लेकिन हिंदू धर्म के अन्य सभी प्राचीन प्रमुख उपनिषदों से पहले हुई थी। **ड्यूसेन** और विंटरनिट्ज़ दोनों ही कौशितकी उपनिषद को सबसे प्राचीन गद्य शैली के उपनिषदों में से एक और बौद्ध-पूर्व, जैन-पूर्व साहित्य मानते हैं।

इयान व्हिचर कौशितकी उपनिषद की रचना लगभग 800 ईसा पूर्व

मानते हैं। **पैट्रिक ओलिवेल** और अन्य विद्वानों द्वारा 1998 में किए गए एक समीक्षा के अनुसार, कौशितकी उपनिषद की रचना संभवतः बौद्ध-पूर्व काल में हुई थी, लेकिन अधिक प्राचीन बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदों के बाद, कौशितकी ग्रंथ को छठी से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के बीच रखा गया है।

संरचना

कौशितकी उपनिषद ऋग्वेद का हिस्सा है, लेकिन भारत के विभिन्न भागों में पाए गए वेद पांडुलिपियों में इसके अध्याय क्रमांक भिन्न-भिन्न हैं। तीन क्रम सबसे आम हैं : उपनिषद कौशितकी आरण्यक के अध्याय 1, 2, 3 और 4 हैं या उस **आरण्यक** के अध्याय 6, 7, 8, 9 हैं या कुछ पांडुलिपियों में अध्याय 1, 7, 8 और 9 हैं। **पॉल ड्यूसेन** का सुझाव है कि ये भिन्न अध्याय क्रमांक इस बात को दर्शाते हैं कि वैदिक साहित्य की उपनिषद परत को आध्यात्मिक ज्ञान के रूप में बनाया गया था और वैदिक ग्रंथों की पूर्व-मौजूद आरण्यक परत में समाहित किया गया था और जब भारत के दूरस्थ भागों में ऐसा किया जा रहा था तो अनुक्रमण जानकारी को समान रूप से लागू नहीं किया गया था।

कौशितकी उपनिषद एक गद्य ग्रंथ है, जो चार अध्यायों में विभाजित है, जिनमें क्रमशः 6, 15, 9 और 20 श्लोक हैं।

कुछ साक्ष्य हैं कि कौशितकी उपनिषद में कुछ पांडुलिपियों में नौ अध्याय थे, लेकिन ये पांडुलिपियाँ या तो खो गई हैं या अभी तक नहीं मिली हैं।

उपनिषद के बारे में विस्तृत समीक्षा

1. उपनिषद् का स्थान और पहचान

कौषीतकि उपनिषद्, जिसे
कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् भी कहा जाता है,
ऋग्वेद की शांखायन शाखा से सम्बद्ध है।

- वेद : ऋग्वेद
- शाखा : शांखायन
- स्वरूप : ब्राह्मण-उपनिषद् (गद्य प्रधान)
- अध्याय : 4
- मुख्य संवाद :
    - ❖ प्रतर्दन-इन्द्र संवाद
    - ❖ बालाकि-अजातशत्रु संवाद

यह उपनिषद् वैदिक कर्मकाण्ड से उठकर **शुद्ध ब्रह्मविद्या** तक पहुँचने की यात्रा का अत्यंत सशक्त उदाहरण है।

2. उपनिषद् का मूल उद्देश्य

कौषीतकि उपनिषद् का **केन्द्रीय उद्देश्य** है—
जीव, प्राण और प्रज्ञा के माध्यम से
आत्मा को ब्रह्म के रूप में प्रतिपादित करना।
यह उपनिषद् यह स्पष्ट करता है कि—

- यज्ञ, दान, तप आदि **साधन** हैं,
- पर **मुक्ति का साधन केवल आत्मज्ञान है।**

यहाँ **प्राण** को केवल श्वास नहीं, बल्कि
चैतन्य-ब्रह्म का सगुण प्रतीक बताया गया है।

3. मुख्य सिद्धान्त (Key Doctrines)

(क) प्राण-प्रज्ञा-आत्मा की एकता

उपनिषद् का मूल वाक्य है—

“**प्राणो वा प्रज्ञात्मा**”

अर्थात्—

- जो प्राण है, वही प्रज्ञा है,
- जो प्रज्ञा है, वही आत्मा है,
- और वही ब्रह्म है।

यहाँ **शरीर-इन्द्रिय-मन-प्राण**

सबको आत्मा का आश्रित उपकरण बताया गया है, स्वरूप नहीं।

(ख) कर्म और ज्ञान का भेद

कौषीतकि उपनिषद् कर्म की **सीमा** दिखाता है—

- कर्म से - लोक
- ज्ञान से - मुक्ति

चन्द्रलोक, स्वर्ग, ब्रह्मलोक

सब **ज्ञान के बिना बन्धन हैं।**

“**ब्रह्मविद् ब्रह्मैवाभिप्रैति**”

(जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्रह्म हो जाता है)

(ग) स्वप्न-सुषुप्ति-मरण का विश्लेषण

यह उपनिषद् चेतना की तीन अवस्थाओं का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण करता है—

1. जाग्रत
2. स्वप्न
3. सुषुप्ति

और बताता है कि—

- सुषुप्ति में इन्द्रियाँ लीन होती हैं,
- पर **प्रज्ञात्मा (आत्मा)** बनी रहती है।

मरण भी उसी का विस्तार है—

जहाँ आत्मा देह से पृथक होकर अपने स्वरूप में स्थित होती है।

4. अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन

यद्यपि यह उपनिषद् प्रतीकात्मक भाषा (प्राण, इन्द्र, लोक) का प्रयोग करता है, पर **निष्कर्ष पूर्णतः अद्वैत** है।

उपनिषद् का अंतिम सत्य—

- न जीव भिन्न है,
- न ईश्वर भिन्न है,
- न प्राण भिन्न है—

सब एक ही ब्रह्म के भेदरहित रूप हैं।

"**स आत्मा—स ब्रह्म**"

यही शुद्ध अद्वैत है।

5. शंकराचार्य की टीका : सार और दृष्टि

आदि शंकराचार्य ने कौषीतकि उपनिषद् पर **अत्यंत सुस्पष्ट अद्वैत टीका** दी है।

शंकराचार्य के प्रमुख निष्कर्ष—

1. प्राण = ब्रह्म (उपचार से)

- प्रारम्भिक उपासना हेतु प्राण का आश्रय
- अन्ततः प्राण भी त्याज्य

2. प्रज्ञा = शुद्ध चैतन्य

- न बुद्धि
- न अहंकार
- बल्कि साक्षी-चैतन्य

3. लोक-वर्णन = उपासना-क्रम

- विरजा नदी, ब्रह्मलोक आदि
- साधक की आन्तरिक शुद्धि के प्रतीक

4. अंतिम सिद्धान्त

- आत्मा कर्ता नहीं
- भोक्ता नहीं
- केवल साक्षी है

शंकर के अनुसार–

यह उपनिषद् ज्ञानकाण्ड की चरम सीमा है।

6. सरल पाठक के लिए संकेत

इस उपनिषद् को पढ़ते समय–

- प्रतीकों को **शाब्दिक न** लें,
- उन्हें **आन्तरिक चेतना की अवस्थाएँ** समझें।
- प्राण को केवल श्वास न मानें,
- उसे **जीवन-चैतन्य** समझें।

यह उपनिषद् ध्यान, आत्मचिन्तन और वैराग्य के लिए अत्यंत उपयोगी है।

7. उपनिषद् का समग्र संदेश

कौषीतकि उपनिषद् का सार एक वाक्य में–

''**जो भीतर प्रज्ञा है, वही प्राण है,**

और वही ब्रह्म है–

उससे भिन्न कुछ भी नहीं।''

शांति पाठ

ॐ श्रीमत्कौषीतकीविद्याविद्यप्रज्ञापराक्षरम्।
प्रत्ययोगिनिर्मुक्तं ब्रह्ममात्रं विचिन्तये॥
वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठित।
आविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः।
अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संधधामि।
ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि।
तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारम्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

काव्यानुवाद

मैं उस ब्रह्म का चिन्तन करूँ,
जो कौषीतकी-विद्या का परम सार है,
जो ज्ञान और प्रज्ञा से परे अक्षर है,
जो समस्त द्वैत से मुक्त, केवल ब्रह्ममात्र है।
मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो,
मेरा मन वाणी में स्थिर हो जाए।
हे ज्ञानदेव! मुझमें प्रकट हो,
मेरी चेतना को प्रकाशित कर।
हे वेद! तू मेरी रक्षा कर,
मेरी श्रुति मुझसे विलग न हो।
इस अध्ययन के द्वारा
मैं दिन-रात सत्य से जुड़ा रहूँ।
मैं ऋत का उच्चारण करूँ,

मैं सत्य का ही कथन करूँ।
वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे,
वह मेरे वक्ता की रक्षा करे।
वह मेरी रक्षा करे,
वह मेरे वक्ता की रक्षा करे।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रथम मंत्र : अध्याय-एक

मंत्रः1-1

कचित् ह वै गार्ग्यः आरुणिं श्वेतकेतुं प्रजिघाय
याज्य इति।
तं ह आसिनं पप्रच्छ—
गौतमस्य पुत्रास्ते संवृतं लोके यन्ति
मा मा अस्यस्यन्यमहो बद्ध्वा
तस्य लोके वास्यसीति।
स होवाच—नाहमेतद्वेद।
आचार्यं प्रच्छानीति।
स ह पितरमासाद्य पप्रच्छ।
तं होवाच—
मा प्राक्षीः।
कथं प्रतिव्रवीषि?
अहमप्येतन्न वेद।
स होवाच—
सदस्येव वयं स्वाध्यायमधीत्य हरामहे,
यन्नः परे दद्युः।
इह उभौ गमिष्याव इति।
स ह समित्पाणिर्गार्ग्यः
आरुणिं प्रत्यचक्रम उपायानीति।
तं होवाच—
ब्रह्माहोऽसि गौतम।
यो मामुपागाः।
एहि त्वा ज्ञापयिष्यामीति॥ 1॥

काव्यानुवाद

एक बार गार्ग्य ऋषि ने
अरुणि के पुत्र श्वेतकेतु से कहा—
''यज्ञ के अधिकारी हो तुम,''
ऐसा कह उसे अपने समीप बैठाया।
बैठे हुए श्वेतकेतु से उन्होंने पूछा—
''गौतम! क्या तुम्हें वह लोक ज्ञात है
जहाँ तुम्हारे पूर्वज जाते हैं?
या क्या तुम बंधन में बँधकर
किसी अन्य लोक में वास करोगे?''
श्वेतकेतु बोला—
''यह मैं नहीं जानता।
अपने आचार्य से पूछूँगा।''
वह पिता के पास गया और प्रश्न किया।
पिता बोले—
''मुझसे यह मत पूछ।
मैं भी इसका उत्तर नहीं जानता।
हम तो सभा में बैठकर
केवल स्वाध्याय करते रहे,
और जो मिला, उसी में तृप्त रहे।
आओ, हम दोनों वहाँ चलें
जहाँ इसका सत्य जाना जा सकता है।''
तब गार्ग्य समिधा हाथ में लेकर
अरुणि गौतम के पास पहुँचे।
उन्हें देखकर अरुणि बोले—
''हे गौतम!

तू ब्रह्म का जिज्ञासु है,
जो मेरे पास आया है।
आ, मैं तुझे वह ज्ञान बताऊँगा।''

<u>**मंत्रः1-2**</u>

स होवाच—
ये वै के च इमाल्लोकात् प्रयन्ति
चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।
तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष आप्यायते,
अथापरपक्षे न प्रजनयति।
एतस्य वै स्वर्गस्य लोकस्य द्वारं यच्चन्द्रमाः।
तं यः प्रत्याह तमतिसृजते।
य एनं न प्रत्याह
तमिह वृक्षभूत्वा वर्षति।
स इह कीटो वा पतङ्गो वा
शकुनिर्वा शार्दूलो वा
सिंहो वा मत्स्यो वा
परश्वा वा पुरुषो वान्यो वा—
एतेषु स्थानेषु प्रत्याजायते
यथाकर्म यथाविद्य।
तमागतं पृच्छति—कोऽसीति।
तं प्रतिब्रूयात्—
ऋतोऽस्मि।
रेत आभृतं।
पञ्चदशात् प्रसूत।
अन्ततः प्रत्यवर्त।
तन्मा पुंसि कर्तये।

अहं पुंसा त्रातार।
मातरि मासि निषिक्तः
स जायमान उपजायमानः
द्वादशत्रयोदश उपमासः।
द्वादशत्रयोदशेन पित्रा
सहैकविंशोऽह।
सर्वदेहं प्रतितिष्ठे।
तन्मा ऋतस्य सत्यस्य
तपसः तेजसा
यशसा ब्रह्मवर्चसेन
अन्तर्यामिणा
अमृतोऽस्मीति।
एवं विद्वान् तमतिसृजते॥ 2॥

काव्यानुवाद

ऋषि बोले—
जो भी इस लोक से प्रस्थान करते हैं,
वे सब चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं।
शुक्ल पक्ष में उनके प्राणों से
चन्द्रमा पुष्ट होता है,
और कृष्ण पक्ष में
वह पुनः जनन नहीं करता।
चन्द्रमा ही स्वर्गलोक का द्वार है।
जो उससे उत्तर दे पाता है,
वह आगे बढ़ जाता है।
जो उत्तर नहीं दे पाता—
वह वर्षा बनकर नीचे गिरता है।

और इस धरती पर
कभी कीट बनता है,
कभी पतंग, कभी पक्षी,
कभी सिंह या शार्दूल,
कभी मछली, कभी कीड़ा,
कभी मनुष्य—
अपने कर्म और विद्या के अनुसार
बार-बार जन्म लेता है।
जब वह फिर वहाँ पहुँचता है,
तो उससे पूछा जाता है—
‘‘तू कौन है?’’
वह उत्तर दे—
मैं ऋत हूँ,
सत्य से उपजा हुआ।
पन्द्रह कलाओं से उत्पन्न,
और अंततः वहीं लौट आया हूँ।
मुझे पुरुष में क्षीण मत करो।
मैं पुरुष का रक्षक हूँ।
माता के गर्भ में
मास भर निषिक्त हुआ,
जन्म लेते-लेते
बारह-तेरह मासों का हुआ।
पिता के साथ
इक्कीस रूपों में स्थित,
मैं प्रत्येक देह में प्रतिष्ठित हूँ।
ऋत, सत्य, तप, तेज,
यश और ब्रह्मवर्चस से युक्त,

मैं अमृत हूँ।
जो इसे जानता है—
उसके लिए द्वार खुल जाता है।

<u>**मंत्रः1-3**</u>

स एतं देवानां पन्थानमासाद्य
अग्निलोकमागच्छति।
स वायुलोकं,
स वरुणलोकं,
स आदित्यलोकं,
स इन्द्रलोकं,
स प्रजापतिलोकं,
स ब्रह्मलोक।
तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्य
आरोह्रदः मुहूर्ताः।
येषु ह वै विरजा नदी,
तिल्यो वृक्षः,
सायुज्यं संस्थान,
अपराजितमायतन।
इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ।
विभुं प्रहितं विचक्षणासन्ध्यमितौजाः प्रयङ्कः।
प्रिया च मानसी,
प्रतिरूपा च चाक्षुषी।
पुष्पाण्यादायावयतौ वै च
जगत्यम्बा च अम्बा च
अप्सरसोंऽभ्यायन्ति।
स एतं ब्रह्मलोकमगच्छति।

तं ब्रह्माभिवादयति—
मम यशसा विरजां
वै नदीं प्रापन्नोऽस्मि,
अयं जिगीष्यतीति ॥3॥

<u>काव्यानुवाद</u>

वह साधक देवयान पथ को प्राप्त कर
क्रमशः अग्नि-लोक में प्रवेश करता है,
फिर वायु-लोक,
वरुण-लोक,
आदित्य-लोक,
इन्द्र-लोक,
प्रजापति-लोक—
और अंततः ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।
उस ब्रह्मलोक के द्वार पर
क्षणों के उज्ज्वल सोपान हैं,
जहाँ विरजा नामक नदी बहती है—
जहाँ कर्म का मल धुल जाता है।
वहाँ तिलक नामक दिव्य वृक्ष है,
सायुज्य का आलय है,
अपराजित, अक्षय धाम है।
इन्द्र और प्रजापति
उस लोक के द्वारपाल हैं।
वहाँ दिव्य सिंहासन है—
प्रज्ञा से प्रकाशित,
तेज से अनुपम।
वहाँ मानसी प्रिया है,

और चाक्षुषी प्रतिरूपा–
मन और नेत्र से ग्रहण की जाने वाली।
फूल हाथों में लिए
अप्सराएँ आती हैं–
जगत्यम्बा और अम्बा,
आनन्द की धाराएँ बनकर।
वह ज्ञानी ब्रह्मलोक में पहुँचकर
ब्रह्म को प्रणाम करता है और कहता है–
''आपके यश से
मैं विरजा नदी को पार कर चुका हूँ,
अब यह आत्मा
पूर्ण विजय को प्राप्त होगी।''

मंत्रः1-4

ब्रह्मविद् ब्रह्मैवाभिप्रैति।
स आगच्छत्यारं हृदयं
तन्मनसाऽत्येति।
तमृत्वा सज़्प्रतिदो
मज्जन्ति।
स आगच्छति मुहूर्तात्
येष्टिहान्।
स आगच्छति विरजां नदीं
तां मनसैवात्येति।
तत्र सुकृतदुष्कृते धुनुते।
तस्य प्रियाः ज्ञातयः
सुकृतमुपयन्ति,
अप्रियाः दुष्कृतम्।

तद्यथा रथेन

वाहयन् रथचक्रे

पर्यवेक्षते,

एवमहोरात्रे पर्यवेक्षते।

एवं सुकृतदुष्कृते

सर्वाणि च द्वन्द्वानि।

स एष निष्कृतो

विदुष्कृतो

ब्रह्मविद् ब्रह्मैवाभिप्रैति॥ 4॥

काव्यानुवाद

ब्रह्म को जानने वाला
ब्रह्म में ही प्रवेश करता है।
वह हृदय के मूल तक पहुँचता है,
और मन को भी पीछे छोड़ देता है।
मृत्यु को पार कर
वह गहन क्षणों में डूबता है,
उन सूक्ष्म मुहूर्तों से गुजरता है
जहाँ यज्ञ भी मौन हो जाते हैं।
वह विरजा नदी तक आता है,
और उसे भी मन से ही पार कर जाता है।
वहीं उसके पुण्य-पाप
झर जाते हैं, गल जाते हैं।
उसके प्रिय संबंधी
उसके पुण्य को ग्रहण करते हैं,
और जो अप्रिय हैं
वे उसके पाप को ले जाते हैं।

जैसे रथ पर बैठा यात्री
घूमते हुए चक्र को देखता है,
वैसे ही वह
दिन-रात के प्रवाह को देखता है।
इसी प्रकार
पुण्य-पाप और सभी द्वन्द्व
उससे अलग हो जाते हैं।
वह न पुण्यवान रह जाता है,
न पापी—
वह ब्रह्म को जानने वाला
ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है।

मंत्रः1-5

स आगच्छति तिल्यं वृक्षं,
तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति।
स आगच्छति सायुज्यं संस्थानं,
तं ब्रह्म स प्रविशति।
स आगच्छत्यपराजितमायतनं,
तं ब्रह्मतेजः प्रविशति।
स आगच्छतीन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ,
तौ बाधापद्रवितौ।
स आगच्छति विभुं प्रहितं,
तं ब्रह्मयशः प्रविशति।
स आगच्छति विचक्षणामासन्दीं—
बृहद्रथन्तरे सामनी
पूर्वौ पादौ,
ध्येयौ नावसे चापरौ पादौ,

वैरूपवैराजे,
शाक्वररैवते तिरश्ची।
सा प्रज्ञा—
प्रज्ञया हि पश्यति।
स आगच्छत्यकृतौजसं पर्यङ्कं,
स प्राणस्तस्य भूतं च भविष्यच्च।
पूर्वौ पादौ श्रीवीरा,
चापरौ बृहद्रथन्तरे।
अनूच्ये भद्रयज्ञायज्ञीये।
शीर्षण्यृचः सामानि च,
प्राचीनातानं यजूंषि।
तिरश्चीनानि सोमांशवः।
उपस्तरणमुद्गीथः।
उपश्रीः।
श्रीरुपबर्हण।
तत्र ब्रह्मास्ते।
तदित्थंकित्पादेनैवाग्र
आरोहति।
तं ब्रह्माह—
कोऽसि?
तं प्रतिव्रूयात्॥ 5॥

काव्यानुवाद

वह साधक तिल्य वृक्ष तक पहुँचता है—
वहाँ ब्रह्म की सुगन्ध उसमें प्रवेश करती है।
वह सायुज्य के संस्थान में आता है—
वहाँ स्वयं ब्रह्म उसमें विलीन हो जाता है।

वह अपराजित धाम में पहुँचता है–
वहाँ ब्रह्म का तेज उसमें उतरता है।
इन्द्र और प्रजापति–
उस लोक के द्वारपाल–
उसके लिए बाधा नहीं बनते।
वह विभु, दिव्य आसन तक पहुँचता है–
वहाँ ब्रह्म का यश उसमें समा जाता है।
वह उस प्रज्ञामयी आसन्दी पर पहुँचता है–
जिसके पाद सामवेद के दिव्य स्वर हैं,
जिसकी गति तिर्यक् है–
जो समस्त दिशाओं को जानती है।
वह प्रज्ञा है–
और प्रज्ञा से ही सत्य देखा जाता है।
फिर वह उस असीम शक्ति वाले पर्यङ्क पर
पहुँचता है,
जहाँ प्राण स्वयं विराजमान है–
भूत, भविष्य और वर्तमान सहित।
उस आसन के चरण वेद हैं–
ऋचाएँ, साम, यजुष्, सोम–
उद्गीथ उसका बिछौना है,
श्री उसकी शोभा है।
वहाँ ब्रह्म विराजमान है।
वह ज्ञानी
एक ही चरण से
उसके समीप आरोहण करता है।

तब ब्रह्म पूछता है—
''तू कौन है?''
और वह उत्तर देने योग्य हो जाता है।

मंत्रः1-6

ऋतुरस्म्यथोऽस्मि
आकाशाद्योनेः सम्भूतः।
भार्यायै रेतः संवत्सरस्य
तेजोभूतस्य भूतस्यात्मभूतस्य।
त्वमात्मासि।
यस्त्वमसि सोऽहमस्मि इति।
तमाह—कोऽहमिति।
सत्यमिति ब्रूयात्।
तत्किं तद्यत्सत्यमिति।
यदन्यद्देवेभ्यः प्राणेभ्यः
तत्सत्।
यद्देवा प्राणा
तद्यं।
तदेतया वाचाऽभिव्याह्रियते—
सत्यमिति।
एतदिदं सर्वं।
सर्वमसि इत्येवैनं तदाह।
तदेतच्छ्लोके नाप्युक्तम्॥ 6॥

काव्यानुवाद

मैं ऋतु हूँ—
मैं वही हूँ जो आकाश-योनि से उत्पन्न हुआ,
जो भार्या में बीज बनकर प्रविष्ट हुआ,

जो संवत्सर का तेज है,
जो भूतों का प्राण है,
जो स्वयं आत्मा है।
तू ही आत्मा है–
और जो तू है, वही मैं हूँ।
जब ब्रह्म पूछता है–
''तू कौन है?''
तो उत्तर दिया जाता है–
''मैं सत्य हूँ।''
फिर पूछा जाता है–
''वह सत्य क्या है?''
जो देवों और प्राणों से परे है–
वही सत् है।
जो देव और प्राण हैं–
वही यम् है।
और वही
इस वाणी से अभिव्यक्त होता है–
सत् + यम् = सत्य।
यही यह सम्पूर्ण जगत् है,
और यही तू है–
सर्वमसि।
इससे आगे
किसी श्लोक में भी
कुछ शेष नहीं कहा गया।

मंत्रः1-7

यजुर्दरः सामशिरा असावृङ् मूर्तिरव्ययः।
स ब्रह्मेति खलु विज्ञेयो ऋषिब्रह्ममयो महानिति॥
तमाह–
केन पुंस्राणि नामान्याप्नोतीति?
प्राणेनेति ब्रूयात्।
केन स्त्रीणि नामानीति?
वाचेति।
केन नपुंसकनामानीति?
मनसेति।
केन गन्धानिति?
घ्राणेनेति।
केन रूपाणीति?
चक्षुषेति।
केन शब्दानिति?
श्रोत्रेणेति।
केनान्नरसानीति?
जिह्वयेति।
केन कर्माणीति?
हस्ताभ्यामिति।
केन सुखदुःखे इति?
शरीरेणेति।
केनानन्दं रतिं प्रजापतिमिति?
उपस्थेनेति।
केन गत्यागती इति?
पादाभ्यामिति।
केन कियो विज्ञातव्यं कामानिति?

प्रज्ञयेति प्रब्रूयात्।

तमाह–

आपो वै खलु मे गृहाः।

असावयं ते लोक इति।

सा या ब्रह्मणि चितिः या व्यष्टिः,

तां चितिं जयति,

तां व्यष्टिं व्यश्नुते।

य एवं वेद।

य एवं वेद॥ 7॥

<u>काव्यानुवाद</u>

यजुर्वेद उसका उदर है,
सामवेद उसका सिर है,
ऋग्वेद उसकी वाणी है–
वह मूर्त होकर भी अव्यय है।
वही ब्रह्म है–
ऋषियों द्वारा अनुभूत,
महान् ब्रह्ममय सत्य।
फिर उससे पूछा गया–
पुरुष नाम कैसे पाता है?
–प्राण से।
स्त्री नाम कैसे पाती है?
–वाणी से।
नपुंसक नाम कैसे?
–मन से।
गन्ध की पहचान किससे?
–घ्राण से।
रूप किससे?

—नेत्र से।
शब्द किससे?
—कर्ण से।
रस किससे?
—जिह्वा से।
कर्म किससे?
—हाथों से।
सुख-दुःख किससे?
—शरीर से।
आनन्द और रति किससे?
—उपस्थ से।
गमन-आगमन किससे?
—चरणों से।
और कामनाओं का ज्ञान
किससे होता है?
—प्रज्ञा से।
तब उसने कहा—
''जल ही मेरा गृह है,
और यह लोक तुम्हारा है।''
जो ब्रह्म में स्थित चेतना है,
जो व्यष्टि रूप में प्रकट है—
जो उस चेतना को जीत लेता है,
वह उस व्यष्टि को प्राप्त कर लेता है।
जो इसे जानता है—
वह इसे पा लेता है।
जो इसे जानता है—
वह इसे पा लेता है।

द्वितीय अध्याय

मंत्रः2-1

प्राणो ब्रह्मेति ह वा कौषीतकिः।
तस्य ह वा एतस्य
प्राणस्य ब्रह्मणो
मनो दूत,
वाक् परिवेष्ट्री,
चक्षुर्गात्रम्,
श्रोत्रं संश्रावयितृ।
यो ह वा एतस्य
प्राणस्य ब्रह्मणो
मनो दूतं वेद,
दूतिवान् भवति।
यो वाचं परिवेष्ट्रीं वेद,
परिवेष्ट्रीमान् भवति।
तस्मै ह्येवैतस्मै
प्राणाय ब्रह्मणे
एताः सर्वा देवता
अयाचमानाः बलिं हरन्ति।
तथैव सर्वाणि भूतानि
अयाचमानायैव
बलिं हरन्ति–
य एवं वेद।
तस्योपनिषत्–
न याचेत्।
तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वा

लब्धोपविशेन्न–

अहं गतो दत्तमश्नीयामिति।

य एवैनं पुरस्तात् प्रत्याचक्षीरन्

त एवैनमुपमन्त्रयन्ते–

ददाम ते इति।

एष धर्मो याचतः।

अन्यस्तु–

निरस्त एव भवति॥ 1॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

कौषीतकि ऋषि कहते हैं–

प्राण ही ब्रह्म है।

उस प्राण-ब्रह्म का

मन दूत है,

वाणी सेविका,

नेत्र उसका अंग,

कान उसका संवाहक।

जो मन को दूत रूप में जानता है,

वह सन्देशवान हो जाता है।

जो वाणी को सेविका रूप में जानता है,

वह सम्मान प्राप्त करता है।

उस प्राण-ब्रह्म को

सभी देवता बिना माँगे

बलि अर्पित करते हैं।

उसी प्रकार

समस्त प्राणी भी

उसे स्वतः अर्पण करते हैं–

जो यह जान लेता है।
इसकी उपनिषद्-शिक्षा है–
माँगना नहीं चाहिए।
जैसे कोई गाँव में भिक्षा लेकर
यह न कहे–
''मैंने कमाया है, मैं खाऊँगा।''
जो उसे पहले पहचान लेते हैं,
वे स्वयं कहते हैं–
''हम तुम्हें देंगे।''
यही याचना का धर्म है–
अन्यथा
मनुष्य त्याग दिया जाता है।

मंत्रः2-2

प्राणो ब्रह्मेति ह वै कौषीतकिः।
तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो
मनो दूतं,
वाक् परिवेष्ट्री,
चक्षुर्गात्रम्,
श्रोत्रं संश्रावयितृ।
यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो
मनो दूतं वेद,
दूतवान् भवति।
यो वाचं परिवेष्ट्रीं वेद,
परिवेष्ट्रीमान् भवति।
तस्मै ह वा एतस्मै प्राणाय ब्रह्मणे
एताः सर्वा देवता अयाचमाना

बलिं हरन्ति।
तथैव ह वा एतस्मै
सर्वाणि भूतानि
अयाचमानायैव
बलिं हरन्ति।
य एतद् वेद ॥2॥

<u>काव्यानुवाद</u>

कौषीतकि ऋषि कहते हैं–
प्राण ही ब्रह्म है, यही सत्य है।
उस ब्रह्मरूप प्राण का
मन दूत है,
वाणी सेविका है,
नेत्र उसका शरीर हैं,
और श्रोत्र उसका संवाहक है।
जो जान लेता है
कि मन उसका दूत है,
वह स्वयं दूतत्व को प्राप्त करता है।
जो वाणी को उसकी सेविका जानता है,
वह वाणी का स्वामी बन जाता है।
उस प्राण-ब्रह्म को
देवता बिना माँगे
अपना बलि-भाग अर्पित करते हैं।
उसी प्रकार
समस्त प्राणी भी
बिना बुलाए
उसके अधीन हो जाते हैं।
जो यह जान लेता है–
वह ब्रह्म को जान लेता है।

मंत्रः2-3

अथात एकिनारोचन।
यदेकिनमभिध्यायात्
पौर्णमास्यां वाऽमावास्यां वा
शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रे,
अग्निमुपसमाधाय
परिसमुह्य परिस्तीर्य
पर्युक्ष्य पूर्वदक्षिणं
जान्वाच्य स्रुवेण वा
चमसेन वा कंसेन वा—
एताः आज्याहुतीर्जुहोति—
वाङ् नाम देवतारोचिनी,
सा मेऽमुष्मादिदमावरुन्धां,
तस्यै स्वाहा।
चक्षुर्नाम देवतारोचिनी,
सा मेऽमुष्मादिदमावरुन्धां,
तस्यै स्वाहा।
श्रोत्रं नाम देवतारोचिनी,
सा मेऽमुष्मादिदमावरुन्धां,
तस्यै स्वाहा।
मनो नाम देवतारोचिनी,
सा मेऽमुष्मादिदमावरुन्धां,
तस्यै स्वाहा।
इत्यथ धूमगन्धं प्रजिघ्राय
आज्यलेपेनाङ्गान्यनुकिमृज्य
वाचं यमोऽभिप्रवृज्य

अथं ब्रूयात्
दूतं वा प्रहिणुयात्—
लभते ह एव ॥ 3 ॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

अब उस एकिनारोचन विधि को जानो—
यदि कोई साधक
पूर्णिमा या अमावस्या को,
या शुद्ध पक्ष के
किसी पुण्य नक्षत्र में,
अग्नि को समाहित कर
भूमि को शुद्ध कर,
आहुति-पात्र लेकर
घी की आहुति दे—
तो वह प्रार्थना करे—
वाणी, जो देवता को प्रकाशित करती है,
वह मेरे लिए यह अभीष्ट सिद्ध करे—
स्वाहा।
नेत्र, जो प्रकाश का द्वार हैं,
वे मेरे लिए यह अभीष्ट सिद्ध करें—
स्वाहा।
श्रवण, जो सत्य को ग्रहण करता है,
वह मेरे लिए यह अभीष्ट सिद्ध करे—
स्वाहा।
मन, जो संकल्प का मूल है,
वह मेरे लिए यह अभीष्ट सिद्ध करे—
स्वाहा।

फिर वह धुएँ की गन्ध को ग्रहण कर
घी से अपने अंगों का स्पर्श करे,
वाणी को संयमित कर
प्रार्थना बोले—
या दूत भेजे—
निश्चय ही वह प्राप्त करता है।

<u>**मंत्रः2-4**</u>

अथातो दैविरो यस्य प्रियो बुभूषेयस्य वा।
एषां वै तेषामेवैतन्निपर्यग्निमुपसमाधाय
एतयैवावृतैतां जुहोमि—
असौ स्वाहा।
चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा।
प्रज्ञानं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा।
इत्यथ धूमगन्धं प्रजिघ्राय
आज्यलेपेनाङ्गान्यनुक्लिमृज्य
वाचं यमोऽभिप्रवृज्य
संस्पर्शं जिगमिषेत्।
अपि वातावा सज़्भाषमाणं तिष्ठन्तं
प्रियं ह्येव भवति।
हरन्ति ह्येवास्य॥ 4॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

अब उस दैविक उपाय का कथन है—
जिसके द्वारा कोई
प्रिय बनना चाहे,
या किसी का प्रिय बनना चाहे।
वह अग्नि को विधिपूर्वक स्थापित कर,

उसी आवरण में
इन आहुतियों का अर्पण करे—
''यह तुझे अर्पित है—स्वाहा।
तेरा चक्षु मुझमें स्थापित हो—स्वाहा।
तेरी प्रज्ञा मुझमें प्रतिष्ठित हो—स्वाहा।''
फिर वह धूम की सुगन्ध को ग्रहण करे,
घृत से अपने अंगों का संस्कार करे,
वाणी को संयमित रखे
और स्पर्श की ओर अग्रसर हो।
तब—
चाहे वह वायु से बात करता हुआ ही क्यों न हो,
वह सबका प्रिय बन जाता है।
लोग स्वतः उसकी ओर आकृष्ट होते हैं,
और उसे स्वीकार करते हैं।

मंत्रः2-5

अथातः सायमन्नं
प्रातर्दानमन्तरमग्निहोत्रमित्याचक्षते।
यावद्वै पुरुषो भाषते
न तावत्प्राणितुं शक्नोति।
प्राणं तदा वाचि जुहोति।
यावद्वै पुरुषः प्राणिति
न तावद्वक्तुं शक्नोति।
वाचं तदा प्राणे जुहोति।
एतेऽन्येऽमृताहुती
जाग्रत्स्वप्नयोः
सततमच्छिन्नं जुहोति।

अथ या अन्या आहुतयोऽवशिष्टाः
ताः कर्ममय्यो भवन्ति।
एतद्ध वै पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं
जुह्वांचक्रुः॥5॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

अब ऋषि कहते हैं—
सायंकाल का भोजन
और प्रातःकाल का दान—
इसी के मध्य जो साधना है,
वही अंतर अग्निहोत्र कहलाती है।
जब तक मनुष्य बोलता है,
तब तक वह श्वास नहीं ले पाता—
उस समय वह प्राण को
वाणी में होम करता है।
और जब तक वह श्वास लेता है,
तब तक बोल नहीं सकता—
तब वह वाणी को
प्राण में आहुति देता है।
जाग्रत और स्वप्न—
इन दोनों अवस्थाओं में
यह अमृत-आहुति
निरन्तर, अविच्छिन्न चलती रहती है।
इसके अतिरिक्त जो कर्म रह जाते हैं,
वे केवल कर्मफलदायक होते हैं।
प्राचीन काल के ज्ञानी
इसी प्रकार इस आन्तरिक अग्निहोत्र का
अनुष्ठान करते थे।

मंत्रः2-6

उक्थं ब्रह्मेति ह वा आह शुष्कभृङ्गरः।
तदृगिति उपासीत।
सर्वाणि ह वा एतानि भूतानि
श्रैष्ठ्यायाभ्यच्यन्ते।
तद्यजुरिति उपासीत।
सर्वाणि ह वा एतानि भूतानि
श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते।
तत्सामेति उपासीत।
सर्वाणि ह वा एतानि भूतानि
श्रैष्ठ्याय सन्नमन्ते।
तच्छिर इति उपासीत।
तद्यश इति उपासीत।
तत्तेज इति उपासीत।
यथैतच्छास्त्राणां
श्रीमत्तमं यशस्वत्तमं तेजस्वत्तमं भवति,
तथैव एवं विद्वान्
सर्वेषां भूतानां
श्रीमत्तमो यशस्वत्तमस्तेजस्वत्तमो भवति।
तमेतमिष्टकं कर्ममयमात्मानमवयुथः संस्करोति।
तन्नि यजुर्भयं प्रियति,
यजुर्मयं ऋङ् मयं होता,
ऋङ् मयं साममयमुद्गाता।
स एष सर्वस्यै त्रयीविद्याया आत्मा।
एष उत एव अस्य आत्मा भवति।
एवं वेद॥ 6॥

काव्यानुवाद

ऋषि शुष्कभृंगार कहते हैं–

उक्थ ही ब्रह्म है।

जो इसे **ऋक्** रूप में उपासता है,

सारे प्राणी उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं।

जो इसे **यजुः** रूप में जानता है,

सब उसके साथ जुड़ जाते हैं।

जो इसे **साम** रूप में साधता है,

सब उसके आगे नत हो जाते हैं।

जो इसे **सिर** जानता है,

जो इसे **यश** मानता है,

जो इसे **तेज** रूप में देखता है–

वह वैसा ही हो जाता है

जैसा शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है–

अत्यन्त श्रीमान्,

अत्यन्त यशस्वी,

अत्यन्त तेजस्वी।

वह कर्ममय आत्मा को

यज्ञ की इष्टका के समान

संस्कारित कर लेता है।

उसमें यजुः बसता है,

ऋग् से होता बनता है,

साम से उद्गाता।

वह त्रयी-विद्या

(ऋक्-यजुः-साम) का

जीवित आत्मस्वरूप बन जाता है।

वही उसका आत्मा हो जाता है।

जो इसे जानता है, वह यही हो जाता है।

मंत्रः2-7

अथातः सर्वजितः कौषीतके
स्त्रीण्युपासनानि भवन्ति।
यज्ञोपवीतं कृत्वा
आप आचम्य
त्रिरुदपात्रं प्रसिच्य
उद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठेत—
उद्गोऽसि पाप्मानं मे
वृङ् वृङ् इति।
एतयैवावृता मध्ये—
संगोऽसि पाप्मानं मे
उद्वृङ् वृङ् इति।
अस्ते यं संगोऽसि
पाप्मानं मे
संवृङ् वृङ् इति।
यदहोरात्राभ्यां पापं करोति
सर्वं वृङ् क्ते॥ 7॥

काव्यानुवाद

अब कौषीतकि ऋषि कहते हैं—
सर्वजित् साधक के लिए
तीन उपासनाएँ बताई जाती हैं।
यज्ञोपवीत धारण कर,
जल से आचमन कर,
तीन बार पात्र में जल भरकर

उदयमान सूर्य की ओर उन्मुख हो—
और कहे—
हे सूर्य!
तू ऊपर उठाने वाला है—
मेरे पाप को काट दे।
फिर मध्य आकाश में कहे—
हे सूर्य!
तू संग्राहक है—
मेरे पाप को उखाड़ दे।
फिर अस्त होते सूर्य से कहे—
हे सूर्य!
तू संहारक है—
मेरे पाप को समूल नष्ट कर दे।
दिन और रात में
जो भी पाप किया गया हो—
यह उपासना
उस सबको काट डालती है।

मंत्रः2-8

अथ मासि मास्यमावास्यायां
पर्वाणि चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेत।
एतयैवावृता हरिततृणाज़्यामथ वाक् प्रत्यस्यति—
यत्ते सुसिमं हृदयज़्
अविचन्द्रमसि श्रितम्।
तेनामृतत्वस्येशानं
माहं पौत्रमघं रुदज़्।
न हायत्पूर्वाः प्रजाः प्रयन्ति,

न जातपुत्रस्याथाजातपुत्रस्याह।
आप्यायस्व।
समेतु ते सर्वे पयांसि।
समुयन्तु वाजा यमादित्या।
अंशुमाप्यायय।
इत्येतास्तिस्र ऋचो जपित्वा
नाज़्यां प्राणेन
प्रजया पशुभिराप्यस्वेति।
दैवीमावृतमावर्तयति।
आदित्यस्यावृतमनुवर्तयति।
दक्षिणं बाहुमनुवर्तते ॥8॥

काव्यानुवाद

अब प्रत्येक मास की अमावस्या को
दिखते हुए चन्द्रमा की उपासना करे।
हरी दूब हाथ में लेकर
वाणी से यह उच्चारण करे–
हे चन्द्र!
तेरा जो निर्मल हृदय है,
जो अमृतमय और अविचल है–
उसी से
मुझे अमरत्व का अधिकारी बना।
मुझ पर
पुत्र-वियोग का रुदन न आए,
मेरी संतान-परम्परा
कभी क्षीण न हो।
हे सोम!

तू पुष्ट हो,
तेरे समस्त रस एकत्र हों,
यम और आदित्य के वाज
तुझमें संचित हों,
तेरा तेज बढ़े।
इन तीन ऋचाओं का जप कर
वह प्रार्थना करे—
मेरी नाभि,
मेरा प्राण,
मेरी सन्तति और पशुधन—
सब पुष्ट हों।
फिर वह
दैवी आवृत्ति में प्रवेश करता है,
सूर्य की आवृत्ति का अनुसरण करता है,
और दाहिना बाहु
उस दिव्य क्रम में बढ़ाता है।

मंत्रः2-9

अथ पौर्णमास्यां पुरस्ताच्चन्द्रमसं
दृश्यमानमुपतिष्ठेत।
एतयैवावृता—
सोमो राजा असि।
विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि।
प्रजापतेर्ब्राह्मणस्त एकं मुख।
तेन मुखेन राज्ञोऽन्नं अत्सि,
तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।
राज्ञस्त एकं मुख।

तेन मुखेन क्षत्रियाणामन्नं अत्सि,
तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।
श्येनस्त एकं मुख।
तेन मुखेन पक्षिणामन्नं अत्सि,
तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।
अग्निस्त एकं मुख।
तेन मुखेनेमं लोकमन्नं अत्सि,
तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।
सर्वाणि भूतानीत्येव पञ्चमं मुखम्।
तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यन्नं अत्सि,
तेन मुखेन मामन्नादं कुरु।
मामाकं प्राणेन प्रजया पशुभिरिक्षस्व।
योऽस्मान् द्वेष्टि,
यं च वयं द्विष्मः,
तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिरिक्षीयस्व इति।
स्थित्वा दैवीमावृतमावर्तयति,
आदित्यस्यावृतमन्वावर्तयति,
दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते॥ 9॥

काव्यानुवाद

पूर्णिमा की रात्रि में
पूर्व दिशा में स्थित चन्द्रमा को निहारकर
साधक उसे इस भाव से उपासित करे—
हे सोमराज!
तू पंचमुखी, सर्वद्रष्टा है।
तेरा एक मुख ब्राह्मण है—

जिससे तू राजाओं का अन्न ग्रहण करता है,
उसी मुख से मुझे अन्नदाता बना।
तेरा एक मुख क्षत्रिय है—
जिससे तू वीरों का अन्न ग्रहण करता है,
उसी से मुझे भी पोषण दे।
तेरा एक मुख श्येन है—
जिससे तू पक्षियों का अन्न ग्रहण करता है,
उसी से मुझे जीवन दे।
तेरा एक मुख अग्नि है—
जिससे तू इस लोक का अन्न भोगता है,
उसी से मुझे अन्नवान बना।
और तेरा पाँचवाँ मुख
समस्त भूतों का है—
जिससे तू पूरे जगत् का अन्न ग्रहण करता है,
उसी से मुझे भी अन्नदाता कर।
मेरी रक्षा
प्राण, प्रजा और पशुओं से कर।
जो मुझसे द्वेष करता है
और जिससे मैं द्वेष करता हूँ—
उसकी शक्ति, संतति और समृद्धि
मुझमें ही विलीन हो जाए।
ऐसा कहकर वह
दैवी आवरण की परिक्रमा करता है,
सूर्य के पथ का अनुसरण करता है,
और दाहिने भुजा से परिक्रमा पूर्ण करता है।

मंत्रः2-10

अथ संवेश्यन् जायायै
हृदयमभिमृशेत्–
यत्ते सुसीमे हृदये हितमसि
प्रजापतौ।
मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं
माहं पौत्रमघं रुदम्।
इति।
न ह वाव तत् पूर्वाः प्रजाः प्रैति ॥10॥

काव्यानुवाद

तब संगम के क्षण में
पति अपनी पत्नी के हृदय का स्पर्श कर कहे–
हे सुसीमे!
जो तुझमें हृदयस्थ है,
जो प्रजापति में प्रतिष्ठित है–
उसे मैं अपने भीतर अनुभव करता हूँ।
मैं स्वयं को
उस तत्त्व का जानने वाला मानता हूँ,
मुझसे कोई संतति
दुःख या पतन को न प्राप्त हो।
इस विधान से
वंश की धारा विच्छिन्न नहीं होती–
पूर्वजों की परम्परा
अविरत आगे बढ़ती है।

मंत्रः2-11

अथ प्रोष्यान् पुत्रस्य मूर्धानमभिमृशति–
अङ्गादङ्गात् सम्भवसि,
हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि,
स जीव शरदः शतम्॥
असाकिति नामास्य गृह्णाति।
अश्मा भव।
परशुर्भव।
हिरण्यमस्तृतं भव।
तेजो वै पुत्रनामासि,
स जीव शरदः शतम्॥
असाकिति नामास्य गृह्णाति।
येन प्रजापतिः प्रजाः पर्यगृह्णीत
अरिष्ट्यै,
तेन त्वा परिगृह्णाज़्यसाकिति।
इत्यथास्य दक्षिणे कर्णे जपति–
अवे प्रयन्तु मघवन्नृजीषिकन्।
इतीन्द्रश्रेवाणि द्रविणानि वेहि।
मा छेत्ता मा व्यथाः।
शतं शरद आयुषो जीव पुत्र।
ते नाम्ना मूर्धानमभिजिघ्राम्यसाकिति।
त्रिरस्य मूर्धानमभिजिघ्रेत्।
गवा त्वा हिङ्कारेणाभिहिङ्करोमीति।
त्रिरस्य मूर्धानमभिहिङ् कुर्यात्॥11॥

काव्यानुवाद

अब पिता
पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर कहता है–
तू मेरे अंग-अंग से उत्पन्न हुआ है,
मेरे हृदय से जन्मा है।
तू ही आत्मा है,
तू ही मेरा जीवित रूप है–
सौ वर्षों तक जीवित रह।
तेरा नाम है **असाकि**।
तू शिला-सा दृढ़ बने,
परशु-सा तेजस्वी बने,
और सुवर्ण-सा शुद्ध व अमर बने।
तेज ही पुत्र का स्वरूप है–
सौ वर्षों तक जीवित रह।
तेरा नाम **असाकि** है।
जिस शक्ति से
प्रजापति ने संतानों की रक्षा की,
उसी शक्ति से
मैं तुझे सुरक्षित करता हूँ।
फिर पिता
पुत्र के दाहिने कान में जप करता है–
हे इन्द्र!
विपत्तियाँ दूर हटें,
श्रेष्ठ धन और बल प्राप्त हों।
कोई तुझे काटे नहीं,

कोई तुझे पीड़ा न दे।
हे पुत्र!
तू सौ वर्षों का जीवन जिए।
तेरा नाम लेकर
मैं तेरे मस्तक को चूमता हूँ–
तीन बार।
और गाय के हिङ्कार के साथ
तीन बार तेरे मस्तक पर
मंगल ध्वनि करता हूँ।

मंत्रः2-12

अथातो दैवः परिमर एतैव ब्रह्म दीप्यते।
यदग्निर्ज्वलत्यथैतदिन्द्रियते,
यन्न ज्वलति तस्यादित्यमेव तेजो गच्छति।
वायुः प्राण एतैव ब्रह्म दीप्यते।
यथादित्यो दृश्यतेऽथैतदिन्द्रियते,
यन्न दृश्यते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति।
वायुः प्राण एतैव ब्रह्म दीप्यते।
यदा चन्द्रमा दृश्यतेऽथैतदिन्द्रियते,
यन्न दृश्यते तस्य विद्युतमेव तेजो गच्छति।
वायुः प्राण एतैव ब्रह्म दीप्यते।
यदा विद्युत् विद्योततेऽथैतदिन्द्रियते,
यन्न विद्योतते तस्य वायुमेव तेजो गच्छति।
वायुः प्राणः।
ताः वा एताः सर्वा देवताः
वायुमेव प्रविश्य

वायौ सुप्ताः
न मूर्च्छन्ति,
तस्मादेव पुनरुदीरते—
इत्यधिदैवतम् अथाध्यात्मम् ॥12॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

अब देवतत्त्व का रहस्य सुनो—
यहीं ब्रह्म प्रकाशित होता है।
जब अग्नि प्रज्वलित होती है,
तो इन्द्रिय उसमें चेतन हो उठती है;
और जब अग्नि बुझ जाती है,
तो उसका तेज
आदित्य में विलीन हो जाता है।
वह प्राण है—
वही ब्रह्म है।
जब सूर्य दिखाई देता है,
तो चेतना जागती है;
और जब वह अदृश्य होता है,
तो उसका तेज
चन्द्रमा में समा जाता है।
वह प्राण है—
वही ब्रह्म है।
जब चन्द्रमा चमकता है,
तो इन्द्रियाँ जागती हैं;
और जब वह छिप जाता है,
तो उसका तेज
विद्युत् में प्रवाहित हो जाता है।

वह प्राण है—
वही ब्रह्म है।
जब विद्युत् कौंधती है,
तो चेतना झिलमिलाती है;
और जब वह न चमके,
तो उसका तेज
वायु में विलीन हो जाता है।
वही वायु—
वही प्राण।
सभी देवता
वायु में ही प्रवेश कर
वहीं विश्राम करते हैं,
मूर्च्छित नहीं होते—
और वहीं से
पुनः जाग्रत हो उठते हैं।
यही **अधिदैविक** सत्य है,
और यही **अध्यात्म** का रहस्य।

मंत्रः2-13

एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।
यद्वाचा वदत्यथैतदिन्द्रियते,
यन्न वदति तस्य चक्षुरेव तेजो गच्छति प्राण।
प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।
यच्चक्षुषा पश्यत्यथैतदिन्द्रियते,
यन्न पश्यति तस्य श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राण।
प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।
यच्छ्रोत्रेण शृणोत्यथैतदिन्द्रियते,

यन्न श्रृणोति तस्य मन ऐव तेजो गच्छति प्राण।
प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते।
यन्मनसा ध्यायत्यथैतदिन्द्रियते,
यन्न ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणम्।
प्राणं ह्येवैताः सर्वा देवताः प्रविश्य
प्राणे सृप्ता न मूर्च्छन्ति।
तेभ्य एव पुनरुदीरन्ते।
तद्यदिह वा एतं विद्वांसौ
उभौ पर्वतावभिप्रवर्तेयाता,
तुष्टूषमाणौ दक्षिणोत्तरौ
न हैवैनं स्तृण्वीयाता।
अथ य एनं द्विषन्ति
यांश्च स्वयं द्वेष्टि,
ते सर्वे परितो विनश्यन्ति ॥13॥

<u>काव्यानुवाद</u>

यही ब्रह्म प्रकाशित होता है—
जब वाणी बोलती है,
तो चेतना जागती है;
और जब वाणी रुक जाती है,
तो उसका तेज
नेत्रों में समा जाता है—
और वह सब प्राण में लीन हो जाता है।
जब नेत्र देखते हैं,
तो वही चेतना प्रकट होती है;
और जब दृष्टि थम जाती है,
तो उसका तेज

श्रवण में उतर जाता है—
और सब प्राण में विलीन हो जाता है।
जब कान सुनते हैं,
तो वही ब्रह्म चमकता है;
और जब श्रवण मौन होता है,
तो उसका तेज
मन में समा जाता है।
जब मन ध्यान करता है,
तो वही चेतना प्रकट होती है;
और जब मन भी रुक जाता है,
तो उसका तेज
प्राण में लीन हो जाता है।
इस प्रकार
सब देवताएँ प्राण में प्रवेश कर
उसी में विश्राम पाती हैं—
वे मूर्छित नहीं होतीं,
वहीं से पुनः जाग्रत होती हैं।
जो इस सत्य को जान ले—
यदि दो पर्वत भी
दक्षिण और उत्तर से
उस पर टूट पड़ें,
तो भी वे उसे स्पर्श नहीं कर सकते।
और जो उससे द्वेष करते हैं,
या जिनसे वह स्वयं द्वेष करता है—
वे सब
अपने ही घेरे में
नष्ट हो जाते हैं।

मंत्रः2-14

अथातो निःश्रेयसादानम्।
एता ह वै देवताः—
अहं श्रेयसे विवदमाना
अवाच्छरीरादुफ्क्रमुः।
तद्दारुभूतं शिष्ये।
अथैतद्वाक् प्रविवेश।
तद्वाचा वदन्तं शिष्यं एव।
अथैतच्चक्षुः प्रविवेश।
तद्वाचा वदन्तं चक्षुषा पश्यन्तं शिष्यं एव।
अथैतच्छ्रोत्रं प्रविवेश।
तद्वाचा वदन्तं चक्षुषा पश्यन्तं
श्रोत्रेण शृण्वन्तं
मनसा ध्यायन्तं शिष्यं एव।
अथैतत्प्राणः प्रविवेश।
तत एवैष समुत्तस्थौ।
तद्देवाः प्राणे निःश्रेयसं विचिन्त्य
प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय
सहैतैः सर्वैरवाच्छरीरादुत्क्रमुः।
ते वायुप्रतिवाकाशात्मानः स्वर्गं ययुः।
तथैव एवंविद्वान्
सर्वेषां भूतानां
प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय
सहैतैः सर्वैरवाच्छरीरादुत्क्रामति।
स वायुप्रतिवाकाशात्मा न स्वरेति।

तद्विद्यत्रैतद्देवाः
तत्प्राप्य तदमृतो भवति—
यदमृता देवाः ॥14॥

काव्यानुवाद

देव बोले—
हम श्रेय की खोज में
इस देह से निकल पड़े।
वाणी देह में प्रविष्ट हुई—
शिष्य बोला,
पर देख न सका।
नेत्र प्रविष्ट हुए—
वाणी बोली,
नेत्रों ने देखा,
पर श्रवण न जागा।
श्रवण आया—
वाणी बोली,
नेत्रों ने देखा,
कानों ने सुना,
पर मन न जागा।
मन प्रविष्ट हुआ—
वाणी बोली,
नेत्रों ने देखा,
कानों ने सुना,
मन ने सोचा—
फिर भी श्रेय नहीं मिला।
तब प्राण प्रविष्ट हुआ—

और सब एकाएक जाग उठे।
देवों ने जाना—
प्राण ही श्रेय है,
प्राण ही प्रज्ञा है,
प्राण ही आत्मा है।
सब देवताओं ने
प्राण-प्रज्ञा-आत्मा की स्तुति की
और देह से बाहर निकल गए।
वे वायु बने,
आकाश स्वरूप हुए,
और अमरता को प्राप्त हुए।
जो ऐसा जानता है—
वह भी
सब भूतों के साथ
प्राण-प्रज्ञा-आत्मा की उपासना कर
इस देह से निकलता है,
वायु बनता है,
आकाश हो जाता है,
और वहीं पहुँचता है
जहाँ देव पहुँचे—
जहाँ अमृत है,
जहाँ देव अमर हैं।

मंत्रः2-15

अथातः पितापुत्रीयं सम्प्रदानमिति चाचक्षते।
पिता पुत्रं प्रेष्याह्वयति।
नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्य

अग्निमुपसमाधाय
उदकुम्भं सपात्रमुपनिधाय
आहतेन वाससा सम्प्रच्छन्नः
श्वेत एत्य पुत्र उपरिष्टादभिनिपद्यते।
इन्द्रियैरस्येन्द्रियाणि संस्पृश्य
अभि वास्याभिमुख एवासीत्तथैव सम्प्रयच्छति–
वाचं मे त्वयि ददानीति पिता।
प्राणं ते मयि दधामीति पुत्रः।
चक्षुर्मे त्वयि ददानीति पिता।
चक्षुस्ते मयि दधामीति पुत्रः।
श्रोत्रं मे त्वयि ददानीति पिता।
श्रोत्रं ते मयि दधामीति पुत्रः।
मनो मे त्वयि ददानीति पिता।
मनस्ते मयि दधामीति पुत्रः।
अन्नरसान् मे त्वयि ददानीति पिता।
अन्नरसांस्ते मयि दधामीति पुत्रः।
कर्माणि मे त्वयि ददानीति पिता।
कर्माणि ते मयि दधामीति पुत्रः।
सुखदुःखे मे त्वयि ददानीति पिता।
सुखदुःखे ते मयि दधामीति पुत्रः।
आनन्दं रतिं प्रजातिं मे त्वयि ददानीति पिता।
आनन्दं रतिं प्रजातिं ते मयि दधामीति पुत्रः।
इत्यां मे त्वयि ददानीति पिता।
इत्यां ते मयि दधामीति पुत्रः।
कियो विज्ञातव्यं कामान् मे त्वयि ददानीति पिता।
कियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दधामीति पुत्रः।

अथ दक्षिणावृदुपनिष्क्रामति।
तं पितानुमन्त्रयते—
यशो ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं
कीर्तिस्त्वा जुषतामिति।
अथेतरः सव्यं अंसमन्ववेक्षते।
पाणिना वाससा वा प्रच्छाद्य
स्वर्गाल्लोकान् कामान् आप्नुहीति।
स यद्यगदः स्यात्
पुत्रस्यैश्वर्ये पिता वसेत्
परिवा व्रजेत्।
यदैवैनं समापयति
तथा समापयितव्यो भवति॥15॥

काव्यानुवाद

अब पिता-पुत्र का वह परम विधान कहा जाता है—
जहाँ जीवन, चेतना और संस्कार
एक देह से दूसरी देह में प्रवाहित होते हैं।
पिता पुत्र को बुलाता है,
नव तृणों से गृह सजाता है,
अग्नि प्रज्वलित करता है,
जल और पात्र रखकर
श्वेत वस्त्रों से आच्छादित हो
पुत्र उसके समीप बैठता है।
इन्द्रिय से इन्द्रिय को स्पर्श कर
पिता कहता है—
''मेरी वाणी तुझमें अर्पित हो।''
पुत्र कहता है—

''तेरा प्राण मुझमें प्रतिष्ठित हो।''
नेत्र, श्रवण, मन,
अन्न का रस, कर्मों की शक्ति,
सुख-दुःख,
आनन्द, रति और सन्तान—
सब पिता सौंपता है,
सब पुत्र धारण करता है।
यह केवल संपत्ति नहीं,
यह **जीवन की उत्तराधिकार-दीक्षा** है।
फिर पिता दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करता है,
और आशीष देता है—
''यश, ब्रह्मतेज, अन्न और कीर्ति
तुझे प्राप्त हों।''
पुत्र बाएँ कंधे की ओर देखता है,
हाथ या वस्त्र से आच्छादित होकर
स्वर्गीय लोकों के कामना-पथ पर बढ़ता है।
यदि पिता दुर्बल हो,
तो पुत्र के ऐश्वर्य में वास करे,
या संन्यास लेकर चला जाए।
जिस प्रकार पिता ने जीवन सौंपा,
उसी प्रकार पुत्र को भी
एक दिन सौंप देना होगा।

तृतीय अध्याय

मंत्रः3-1

प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं
नामोपजगाम युद्धेन पौरुषेण च।
तं हेन्द्र उवाच—
प्रतर्दन वरं ते ददानीति।
स होवाच प्रतर्दनः—
त्वमेव वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय
हिततमं मन्यसे इति।
तं हेन्द्र उवाच—
न वै वरं परवै वृणीते,
त्वमेव वृणीष्व इति।
अथो ह प्रतर्दन उवाच—
यदि तथा किमहमिति।
तं होवेन्द्रः—
सत्यादेव नेयाय।
सत्यं हि इन्द्रः।
स होवाच—
मामेव विजानीहि।
एतदेवाहं मनुष्याय
हिततमं मन्ये—
यन्मां विजानीयात्।
त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम्,
अवाङ् मुखान्यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्।
बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य

दिवि प्रह्लादीन्,
अतृणं अहमन्तरिक्षे,
पौलोमान् पृथिव्यां,
कालकाञ्जान्
तस्य मे तत्र न लोम च
नामीयते।
यो मां विजानीयात्
नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते—
न मातृवधेन,
न पितृवधेन,
न स्तेयेण,
न भ्रूणहत्यया,
नास्य पापं च
न च कृषो मुखान्निर्वेत्ति इति॥1॥

काव्यानुवाद

दैवोदासि प्रतर्दन
युद्ध और पुरुषार्थ से
इन्द्र का प्रिय बनकर
उसके समीप पहुँचा।
इन्द्र बोले—
''हे प्रतर्दन!
वर माँग, मैं तुझे दूँ।''
प्रतर्दन ने कहा—
''हे इन्द्र!
जो तुम मनुष्य के लिए
सबसे हितकर समझते हो,

वही स्वयं चुन लो।''
इन्द्र ने उत्तर दिया—
''कोई देव दूसरे के लिए
वर नहीं चुनता,
तू स्वयं माँग।''
तब प्रतर्दन बोला—
''यदि ऐसा है,
तो फिर मैं क्या माँगूँ?''
इन्द्र ने कहा—
''सत्य से ही मार्ग मिलता है,
क्योंकि सत्य ही इन्द्र है।''
फिर इन्द्र बोले—
''मुझे ही जान।
मैं यही मनुष्य के लिए
परम हित मानता हूँ—
कि वह मुझे जाने।''
मैंने त्रिशीर्षा त्वाष्ट्र को मारा,
अधर्मियों को श्वानों को सौंपा,
अनेक संधियों को लाँघकर
स्वर्ग में प्रह्लादों को,
अंतरिक्ष में असुरों को,
पृथ्वी पर पौलोमों को परास्त किया।
फिर भी मेरा
एक रोएँ तक का नाश नहीं हुआ।
जो मुझे जान ले—
उसका लोक किसी कर्म से

नष्ट नहीं होता—
न माता-वध से,
न पिता-वध से,
न चोरी से,
न भ्रूण-हत्या से।
उसके पाप
उसके मुख से झर जाते हैं,
और वह अधोगति को
प्राप्त नहीं होता।

<u>मंत्रः3-2</u>

स होवाच—
प्राणोऽन्तः प्रज्ञात्मा।
तं मामायुरमृतमित्युपास्व।
आयुः प्राणः।
प्राणो वा आयुः।
प्राण उवाच—अमृत।
यावद्ध्यन्तः शरीरे प्राणो वसति
तावदायुः।
प्राणेन ह्येवामुष्मिंल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।
प्रज्ञया सत्यसंकल्पः।
स यो मां आयुरमृतमित्युपास्ते
सर्वमायुरन्तं लोक एवाप्नोति
अमृतत्वमक्षरं स्वर्गे लोके।
तद्धैक आहुः—
एकभूय एव प्राणा गच्छन्तीति।
न हि किञ्चन शक्नुयात्

सकृद्वाचा नाम प्रज्ञापयितुं
चक्षुषा रूपं
श्रोत्रेण शब्दं
मनसा ध्यान।
एकभूय एव प्राणा भूत्वा
एकैकं सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञापयन्ति।
वाचं वदन्तीं सर्वे प्राणा अनुवदन्ति।
चक्षुः पश्यत् सर्वे प्राणा अनुपश्यन्ति।
श्रोत्रं शृण्वत् सर्वे प्राणा अनुशृण्वन्ति।
मनो ध्यायत् सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति।
प्राणं प्राणयन् सर्वे प्राणा अनुप्राणन्ति।
इत्येवमुहैवैतदिति।
हेन्द्र उवाच—
अस्तीत्येव प्राणानां
निःश्रेयसादानमिति ॥2॥

काव्यानुवाद

ऋषि बोले—
प्राण ही भीतर स्थित
प्रज्ञा-आत्मा है।
उसी को
आयु और **अमृत** मानकर उपासना करो।
प्राण ही आयु है,
और आयु ही प्राण।
प्राण ने कहा—
मैं ही अमृत हूँ।
जब तक देह में प्राण वास करता है,

तब तक जीवन टिकता है।
प्राण के द्वारा ही
मनुष्य इस लोक में अमृतत्व को पाता है।
प्रज्ञा से संकल्प सत्य बनता है।
जो मुझे
''आयु और अमृत'' जानकर उपासता है,
वह सम्पूर्ण आयु को
इसी लोक में पूर्ण करता है,
और स्वर्गलोक में
अक्षय अमृतत्व को प्राप्त होता है।
ज्ञानी कहते हैं–
प्राण सब मिलकर एक हो जाते हैं।
क्योंकि कोई भी इन्द्रिय
अकेले अपना कार्य नहीं कर सकती–
न वाणी अकेले नाम बता सकती है,
न नेत्र अकेले रूप जान सकता है,
न कान अकेले शब्द पकड़ सकता है,
न मन अकेले ध्यान कर सकता है।
सब प्राण एक होकर
इन सबको समर्थ बनाते हैं।
वाणी बोलती है–
तो सभी प्राण उसके साथ बोलते हैं।
नेत्र देखता है–
तो सभी प्राण उसके साथ देखते हैं।
कान सुनता है–
तो सभी प्राण उसके साथ सुनते हैं।

मन ध्यान करता है–
तो सभी प्राण उसके साथ ध्यान करते हैं।
एक प्राण चलता है–
तो सब प्राण चल पड़ते हैं।
इसी प्रकार यह रहस्य है–
ऐसा ही है।
हे इन्द्र!
प्राणों का यही
परम कल्याण का दान है।

<u>मंत्रः3-3</u>

जीवति वागपेतो मूकान् पश्यामः।
जीवति चक्षुरपेतोऽन्धान् पश्यामः।
जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान् पश्यामः।
जीवतो बाहुच्छिन्नः,
जीवत्यूरुच्छिन्न इति हि पश्यामः।
अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मा
इदं शरीरं परिगृह्याप्याययति।
तस्मादेतमेवोक्तमुपासीत–
यो वै प्राणः सा प्रज्ञा,
या वै प्रज्ञा स प्राणः।
स ह्येतावन्ति शरीरे वसतः
सह उत्क्रामति।
तस्यैषैव दृष्टिर्यत्रैतत्पुरुषः सुप्तः
स्वप्नं न कञ्चन पश्यति।
अथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति।
तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति,

चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति,
श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति,
मनः सर्वैर्ध्यायैः सहाप्येति।
स यदा प्रतिबुध्यते
यथावेज्जलितो विस्फुलिङ्गा
विप्रतिषेधन्ते,
एवमेवैतदात्मनः प्राणा
यथायतनं विप्रतिषेधन्ते।
प्राणेभ्यो देवाः,
देवेभ्यो लोकाः।
तस्यैषैव सिद्धिर्यत्रैतत्पुरुषः
आतो मरिष्यन्नाबाल्यं नीयते,
न मोहं नैति।
तदाहुरुदक्रमीञ्छित्तं–
न शृणोति, न पश्यति।
वाचा वदत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति।
तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति,
चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति,
श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति,
मनः सर्वैर्ध्यायैः सहाप्येति।
स यदा प्रतिबुध्यते
यथावेज्जलितो विस्फुलिङ्गा
विप्रतिषेधन्ते,
एवमेवैतदात्मनः प्राणा
यथायतनं विप्रतिषेधन्ते।
प्राणेभ्यो देवाः,
देवेभ्यो लोकाः ॥3॥

काव्यानुवाद

वाणी खोकर भी जीवन रहता है,
नेत्र गँवाकर भी साँस बहती है।
श्रवण टूटे, अंग कटे,
फिर भी जीवित देह चलती है—
क्योंकि प्राण ही
इस तन की चेतना है।
प्राण ही प्रज्ञा है,
प्रज्ञा ही प्राण—
दो नाम हैं,
पर तत्त्व एक।
सोते हुए जब स्वप्न भी न बचे,
सब इन्द्रियाँ
प्राण में विलीन हो जाती हैं।
नाम, रूप, शब्द, विचार—
सब उसी में समा जाते हैं।
जागरण आते ही
जैसे अग्नि से चिंगारियाँ
अपने-अपने स्थान को लौटती हैं,
वैसे ही प्राण से
इन्द्रियाँ लौट आती हैं।
प्राण से देव जन्म लेते हैं,
देवों से लोक फैलते हैं।
और जो इसे जान लेता है—
वह मृत्यु के द्वार पर भी
मोह में नहीं पड़ता।

न सुनता है, न देखता है,
न कुछ कहता है—
तब भी प्राण अकेला रहता है।
और फिर जागरण में
सब कुछ पुनः प्रकट हो उठता है।
यही सिद्धि है,
यही ब्रह्मबोध है—
कि प्राण ही प्रज्ञा है,
और प्रज्ञा ही जीवन का सत्य।

मंत्रः3-4

स यदा वाच्छरीरादुत्क्रामति
वाग्वत्सर्वाणि नामान्यभिविसृजते,
वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति।
प्राणोऽवत्सर्वान् गन्धानभिविसृजते,
प्राणेन सर्वान् गन्धानाप्नोति।
चक्षुरवत्सर्वाणि रूपाण्यभिविसृजते,
चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्याप्नोति।
श्रोत्रमवत्सर्वान् शब्दानभिविसृजते,
श्रोत्रेण सर्वान् शब्दानाप्नोति।
मनोऽवत्सर्वाणि ध्यातान्यभिविसृजते,
मनसा सर्वाणि ध्यातान्याप्नोति।
सैषा प्राणे सर्वानुभूतयो वै।
प्राणः सा प्रज्ञा,
या वा प्रज्ञा स प्राणः।
स ह्येतावन्ति शरीरे वसतः
सहोत्क्रामतः।

अथ खलु यथा
प्रज्ञायां सर्वाणि भूतान्येकीभवन्ति,
तद्व्याख्यास्यामः ॥4 ॥

<u>काव्यानुवाद</u>

जब वह आत्मा
इस शरीर से प्रस्थान करती है—
तो वाणी के साथ
सारे नाम मुक्त हो जाते हैं,
और वही वाणी
सभी नामों को फिर धारण कर लेती है।
प्राण के साथ
सभी गंध विलीन हो जाते हैं,
और प्राण से ही
सारी गंधों की पुनः प्राप्ति होती है।
नेत्रों के साथ
सभी रूप छूट जाते हैं,
और दृष्टि से
सभी रूप फिर उपलब्ध होते हैं।
श्रवण के साथ
सारे शब्द विलीन होते हैं,
और श्रवण से
सभी शब्द पुनः मिलते हैं।
मन के साथ
सभी चिंतन लीन हो जाते हैं,
और मन से
सभी विचार फिर सजीव हो उठते हैं।

यह सब अनुभूतियाँ
प्राण में ही स्थित हैं।
प्राण ही प्रज्ञा है—
और प्रज्ञा ही प्राण है।
जीवन में रहते हुए भी
और शरीर से निकलते समय भी
यही सत्य बना रहता है।
अब जैसे
प्रज्ञा में समस्त भूत
एकत्व को प्राप्त हो जाते हैं—
उस रहस्य का
हम आगे विवेचन करेंगे।

मंत्रः3-5

वागेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्यै नाम परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
घ्राणमेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्य गन्धः परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
चक्षुरेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्य रूपं परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
श्रोत्रमेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्य शब्दः परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
जिह्वैवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्यान्नरसः परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
हस्तावेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तयोः कर्म परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
शरीरमेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।

तस्य सुखदुःखे परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
उपस्थ एवस्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः
परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
पादावेवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तयोरित्या परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा।
प्रज्ञैवास्या एकमङ्गमुदूढम्।
तस्यै प्रियो विज्ञातव्यं कामाः
परस्तात् प्रतिष्ठिता भूतमात्रा ॥5 ॥

काव्यानुवाद

वाणी इसका एक अंग है,
जिसमें नामों का संसार टिका है।
घ्राण इसका एक अंग है,
जिसमें गन्ध का लोक बसता है।
नेत्र इसका एक अंग है,
जिसमें रूपों की सत्ता है।
श्रवण इसका एक अंग है,
जिसमें शब्दों का विस्तार है।
जिह्वा इसका एक अंग है,
जिसमें रस का वैभव है।
हाथ इसका एक अंग हैं,
जिनमें कर्म का विधान है।
देह इसका एक अंग है,
जहाँ सुख-दुःख की अनुभूति है।
उपस्थ इसका एक अंग है,
जहाँ आनन्द, रति और सृष्टि है।

पाँव इसका एक अंग हैं,
जिनसे गति और यात्रा है।
और प्रज्ञा इसका एक अंग है–
जहाँ ज्ञेय कामों का बोध है।
इन सबके पार
सूक्ष्म रूप से
भूतमात्रा प्रतिष्ठित है–
जो इन्द्रियों से परे
एकत्व का रहस्य है।

मंत्रः3-6

प्रज्ञया वाचं समारुह्य
वाचा सर्वाणि नामानि आप्नोति।
प्रज्ञया प्राणं समारुह्य
प्राणेन सर्वान् गन्धान् आप्नोति।
प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य
चक्षुषा सर्वाणि रूपाणि आप्नोति।
प्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य
श्रोत्रेण सर्वान् शब्दान् आप्नोति।
प्रज्ञया जिह्वां समारुह्य
जिह्वया सर्वान् अन्नरसान् आप्नोति।
प्रज्ञया हस्तौ समारुह्य
हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माणि आप्नोति।
प्रज्ञया शरीरं समारुह्य
शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति।
प्रज्ञया उपस्थं समारुह्य
उपस्थेन आनन्दं रतिं प्रजातिं आप्नोति।

प्रज्ञया पादौ समारुह्य
पादाज़्यां सर्वाः गतयः आप्नोति।
प्रज्ञयैव कियं समारुह्य
प्रज्ञयैव कियो विज्ञातव्यं कामान् आप्नोति ॥6॥

काव्यानुवाद

प्रज्ञा की सीढ़ी चढ़ वाणी पर आरूढ़ होकर
वह समस्त नामों को प्राप्त कर लेता है।
प्रज्ञा से प्राण को साधकर
वह सभी सुगन्धों का अनुभव करता है।
प्रज्ञा से नेत्रों को अधिष्ठित कर
वह रूपों की समस्त दुनिया को देखता है।
प्रज्ञा से श्रवण को जाग्रत कर
वह प्रत्येक शब्द को सुन लेता है।
प्रज्ञा से जिह्वा को संयमित कर
वह अन्न-रसों का आस्वाद पाता है।
प्रज्ञा से हाथों को प्रेरित कर
वह समस्त कर्मों को कर सकने में समर्थ होता है।
प्रज्ञा से शरीर को आधार बनाकर
वह सुख और दुःख—दोनों का साक्षी बनता है।
प्रज्ञा से उपस्थ को नियंत्रित कर
वह आनन्द, रति और सृष्टि-शक्ति को जानता है।
प्रज्ञा से पैरों को गति देकर
वह जीवन की सभी दिशाओं में गमन करता है।
और अंततः—
प्रज्ञा के द्वारा ही
वह उस **कियो** को प्राप्त करता है,
जिसे जानना ही परम कामना है।

मंत्रः3-7

न हि प्रज्ञापेता वाक् नाम किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतं चक्षुः रूपं किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतद्रूपं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतं श्रोत्रं शब्दं किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतच्छब्दं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेता जिह्वा अन्नरसं किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतमन्नरसं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतौ हस्तौ कर्म किञ्चन प्रज्ञापयेताम्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतत्कर्म प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखदुःखं किञ्चन प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतत्सुखदुःखं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं किञ्चन
प्रज्ञापयेत्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।

आह—नाहमेतमानन्दं रतिं प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेतौ पादौ गतिं किञ्चन प्रज्ञापयेताम्।
अन्यत्र मे मनोऽभूदिति।
आह—नाहमेतां गतिं प्राज्ञासिषमिति।
न हि प्रज्ञापेता स्त्री काचन सिद्ध्येत्।
प्रज्ञातव्यं प्रज्ञायैव प्रज्ञायेत्॥7॥

<u>काव्यानुवाद</u>

प्रज्ञा से रहित वाणी
किसी नाम को नहीं जान पाती—
वह कहती है,
''मन साथ नहीं था,
इसलिए पहचान न सकी।''
प्रज्ञा-विहीन प्राण
कभी गन्ध को नहीं पहचानता—
वह स्वीकार करता है,
''मन उपस्थित नहीं था।''
प्रज्ञा के बिना नेत्र
रूप को नहीं देख पाते,
कान शब्द को नहीं जान पाते,
जिह्वा स्वाद से अनभिज्ञ रह जाती है।
हाथ कर्म नहीं जानते,
शरीर सुख-दुःख से अचेत हो जाता है,
उपस्थ आनन्द, रति और सृष्टि-शक्ति
सब कुछ खो बैठता है।
पाँव गति को नहीं पहचानते—

हर इन्द्रिय कहती है:
''मन वहाँ नहीं था,
इसलिए ज्ञान नहीं हुआ।''
और अन्त में उपनिषद् कहता है—
प्रज्ञा के बिना
कुछ भी सिद्ध नहीं होता।
जो जानना है,
वह प्रज्ञा से ही जाना जाता है।

<u>मंत्रः3-8</u>

न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यात्।
न गन्धं विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यात्।
न रूपं विजिज्ञासीत रूपविदं विद्यात्।
न शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्यात्।
नान्नरसं विजिज्ञासीत अन्नरसविज्ञातारं विद्यात्।
न कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं विद्यात्।
न सुखदुःखे विजिज्ञासीत सुखदुःखयोर्विज्ञातारं विद्यात्।
नानन्दं रतिं प्रजातिं विजिज्ञासीत
आनन्दरतिप्रजातिविज्ञातारं विद्यात्।
नित्यां विजिज्ञासीत एतारं विद्यात्।
न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात्।
ता वा एता दशैव भूतमात्रा
अभिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अभिभूत।
यदि भूतमात्रा न स्युः न प्रज्ञामात्राः स्युः।
अथ प्रज्ञामात्रा न स्युः न भूतमात्राः स्युः ॥8॥

काव्यानुवाद

वाणी को मत जानो—
वक्ता को पहचानो।
गन्ध में मत उलझो—
घ्राता को जानो।
रूप को मत खोजो—
द्रष्टा को पहचानो।
शब्द को मत पकड़ो—
श्रोता को जानो।
रस में मत डूबो—
रसज्ञ को देखो।
कर्म से मत बँधो—
कर्ता को जानो।
सुख-दुःख में मत अटको—
उनके साक्षी को पहचानो।
आनन्द, रति, प्रजा में मत उलझो—
उनके जानने वाले को जानो।
गति को मत पकड़ो—
गन्ता को पहचानो।
मन को मत खोजो—
मन के ज्ञाता को जानो।
ये दसों इन्द्रिय-विषय
भूतमात्र हैं,
और ये दसों ज्ञाता
प्रज्ञामात्र हैं।

यदि विषय न हों
तो ज्ञान प्रकट नहीं होता,
और यदि ज्ञान न हो
तो विषय भी अर्थहीन हो जाते हैं।
ज्ञान और विषय—
दोनों का समन्वय ही
जीवन का सत्य है।

<u>मंत्रः3-9</u>

न ह्यन्यतरतो रूपं किंचन सिद्ध्येत्
नो एतन्नाना।
तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरर्पिता,
नेमौ नाभिरर्पिता,
एवमेवैताः भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः,
प्रज्ञामात्राः प्राणेऽर्पिताः।
एष प्राण एव प्रज्ञात्मा।
अजरोऽमृतः।
न साधुना कर्मणा भूयान्,
न एव असाधुना कर्मणा कनीयान्।
एष ह्येवैनं साधुकर्म कारयति
तं यमन्वानुनेषति।
एष एवैनमसाधुकर्म कारयति
तं यमेभ्यो लोकेभ्यो निनीत्सति।
एष लोकपालः।
एष लोकाधिपतिः।
एष सर्वेश्वरः।

स म आत्मेति विद्यात्।

स म आत्मेति विद्यात्॥9॥

<u>काव्यानुवाद</u>

किसी एक से रूप सिद्ध नहीं होता,
यह सत्ता खण्डित नहीं है।
जैसे रथ की अरियाँ
नाभि में टिकी होती हैं,
और नाभि
धुरी में—
वैसे ही समस्त भूत
प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हैं,
और प्रज्ञा
प्राण में अवस्थित है।
वही प्राण
प्रज्ञा-स्वरूप आत्मा है—
अजर, अमर।
वह न पुण्य से बड़ा होता है,
न पाप से छोटा।
वही आत्मा
जीव से शुभ कर्म करवाती है
और उसे श्रेष्ठ लोकों की ओर ले जाती है।
और वही आत्मा
अशुभ कर्म भी करवाती है
और जीव को
अधोलोकों की ओर प्रवृत्त करती है।
वही लोकपाल है,

वही लोकों का अधिपति,
वही सर्वेश्वर है।
उसे ही
''**वह मैं हूँ**''
ऐसे जानना चाहिए।
उसे ही
''**वह मैं हूँ**''
ऐसे जानना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

मंत्रः4-1

गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचानः संस्पृष्ट आस।
सोऽयमुष्णरेषु संवसन्
मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु
काशीविदेहेष्विति।
स हाजातशत्रुं काश्यं
एत्योवाच—
ब्रह्म ते ब्रवीमि इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
सहस्रं दद्मस्ते।
एतस्यां वाचि जनको जनक इति वा उ जन इति
वा वावि॥1॥

काव्यानुवाद

देश-देश भटके गार्ग्य ऋषि,
ज्ञान-गर्व से भरे हुए।
उष्णर, मत्स्य, कुरु-पंचाल,
काशी-विदेह सभी जिये।
राजा अजातशत्रु के द्वार
वे पहुँचे आत्मविश्वास लिए—
''ब्रह्म का तत्त्व मैं जानता हूँ,
आज तुम्हें उपदेश दिए।''
राजा मुस्काए, शांत स्वर में—
''सहस्र गौएँ मैं दूँ तुम्हें,
पर ब्रह्मवाणी की इस सभा में

जनक ही माने जाते हैं।''
कहना सरल, जानना कठिन–
यह संकेत था उस वचन में,
वाणी नहीं, अनुभव चाहिए
ब्रह्म-बोध के अणुक्षण में।

<u>मंत्रः4-2</u>

स होवाच बालाकिः–
यो वै एष आदित्ये पुरुषः
तमेवाहमुपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः–
अर्थमेतस्मिन् सम्वादय।
बृहत्तः पाण्डुरवासाः।
एष सर्वेषां भूतानां मूर्धा इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते–
अतिवा स सर्वेषां भूतानां मूर्धा भवति॥2॥

<u>काव्यानुवाद</u>

बालाकि बोला–
''जो यह सूर्य में स्थित पुरुष है,
मैं उसी की उपासना करता हूँ।''
अजातशत्रु ने कहा–
''इसमें और गहराई से विचार करो।
वह विराट है,
श्वेत-दीप्त वस्त्र धारण किए,
समस्त प्राणियों का शिरोभाग है।''
जो इस सत्य को ऐसे जानकर उपासता है–

वह स्वयं
सब भूतों में श्रेष्ठ,
सबका शिरोभाग बन जाता है।

मंत्रः4-3

स एव एष बालाक्यथ–
एष एव चन्द्रमसि पुरुषः।
तमेवाहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः–
माथ मैतत्।
एतस्मिन् सज़्वादयिष्यामि।
सोमो राजा अन्नस्यात्मा इति वा
अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
अन्नस्यात्मा भवति ॥3॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने फिर कहा–
चन्द्रमा में जो पुरुष स्थित है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर
आराधना करता हूँ।
अजातशत्रु ने उत्तर दिया–
''रुको, यहीं मत ठहरो,
इस विषय में
मैं तुम्हें और आगे ले चलूँगा।
चन्द्रमा सोमराज है–
अन्न का आत्मतत्त्व।
मैं उसे इसी रूप में

उपासता हूँ।''
जो साधक
इस प्रकार सोम को जानता है,
वह स्वयं
अन्न का आत्मा बन जाता है—
पोषक, जीवनदाता।

<u>**मंत्रः4-4**</u>

स होवाच बालाकिः—
एवैष विद्युत्यां पुरुषः।
एतमेवाहं ब्रह्मोपासे इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
मैतद्विन्समवादय।
तेजस आत्मा इति वा अहमेतमुपासे।
स यो हैतमेवमुपास्ते
तेजस आत्मा भवति॥4॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

बालाकि ने कहा—
यह जो विद्युत् में स्थित पुरुष है,
इसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।
अजातशत्रु ने उत्तर दिया—
इस विषय में मुझसे विवाद मत करो,
मैं इसे **तेज का आत्मस्वरूप** मानकर उपासता हूँ।
जो इस पुरुष को
इसी प्रकार जानकर उपासता है,
वह स्वयं
तेज का आत्मा हो जाता है।

मंत्रः4-5

स होवाच बालाकिर्गार्ग्यः—
एष एव स्तनयित्नौ पुरुषः।
एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
मैतन्निव।
शब्दस्यात्मेति वा अहमेवमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
शब्दस्यात्मा भवति ॥5॥

काव्यानुवाद

तब बालाकि गार्ग्य ने कहा—
यह जो गर्जन करता हुआ
स्तनयित्नु (मेघ-नाद) में स्थित पुरुष है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।
अजातशत्रु ने उत्तर दिया—
नहीं, यहीं मत ठहरो।
मैं तो इसे **शब्द का आत्मतत्त्व** मानकर
ब्रह्म की उपासना करता हूँ।
जो इस प्रकार
ब्रह्म को शब्द का आत्मा जानकर उपासता है,
वह स्वयं
शब्द का अधिष्ठान बन जाता है।

मंत्रः4-6

स होवाच बालाकिः—
एष एव आकाशे पुरुषः।

तमेवाहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
नैवैतन्मे सम्यग्विदितम्।
पूर्णं प्रवर्तते ब्रह्मेति वा
अहमेतमुपासे।
स यो हैतमेवमुपास्ते
पूर्यते प्रजया पशुभिः।
नास्य प्रजा कदाचन
पूर्वात्कालात् प्रवर्तते ॥6॥

<u>काव्यानुवाद</u>

बालाकि बोले—
जो आकाश में स्थित पुरुष है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर
उपासना करता हूँ।
अजातशत्रु ने उत्तर दिया—
यह ज्ञान अभी पूर्ण नहीं है।
मैं उस ब्रह्म की उपासना करता हूँ
जो सदा पूर्ण रूप से प्रवाहित है,
जो कभी रुकता नहीं।
जो इस प्रकार
उस प्रवहमान, पूर्ण ब्रह्म की
उपासना करता है—
वह संतान और पशु-सम्पदा से
परिपूर्ण हो जाता है।
उसकी वंश-धारा
कभी समय से पहले
नष्ट नहीं होती।

मंत्रः4-7

स होवाच बालाक्य–
एष वै वायौ पुरुषः।
तमहं ब्रह्मोपासे इति।
तं होवाच अजातशत्रुः–
मा एतस्मिन्संवादिषीः।
इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेना इति
वा अहमेतमुपासे।
स यो हैतमेवमुपास्ते
जिष्णुर्भवति वा
पराजिष्णुरन्यतरस्य ज्यान् भवति॥7॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा–
''वायु में जो पुरुष विराजमान है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया–
''यहीं मत ठहरो, यह पूर्ण ज्ञान नहीं।
मैं उसे इन्द्र रूप में उपासता हूँ–
जो वैकुण्ठ है,
जिसकी सेना अपराजेय है।''
जो साधक इस रूप में उपासना करता है,
वह सदा विजयी होता है–
या कम से कम
दूसरों से श्रेष्ठ और बलवान बनता है।

मंत्रः4-8

स होवाच बालाकिः–
एष एव अग्नौ पुरुषः।
तमेवाहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः–
मैतत्।
विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
विषासहिर्येव स भवति॥8॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा–
''अग्नि में जो पुरुष स्थित है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया–
''यह भी पर्याप्त नहीं है।
मैं तो उसे **विषासह–**
विष को सह लेने वाला,
अजेय तेज–
इसी रूप में उपासता हूँ।''
जो साधक
इस रूप में उसकी उपासना करता है,
वह स्वयं भी
विष को जीत लेने वाला,
अदम्य और निर्भय हो जाता है।

मंत्रः4-9

स होवाच बालाकिः—
एवैषोऽप्सु पुरुषस्तमेवाहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
नैतन्मे सम्यग्विज्ञातम्।
नाम्न्यस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
नाज़्न्यस्यात्मा भवति।
इत्यधिदैवतमथाध्यात्मम्॥9॥

काव्यानुवाद

बालाकि बोले—
''जल में जो पुरुष विराजमान है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु ने कहा—
''यह ज्ञान अभी पूर्ण नहीं है।
मैं उसे '**नाम**' में स्थित आत्मा के रूप में
उपासता हूँ।''
जो इस प्रकार उपासना करता है,
वह नाम में स्थित आत्मा को प्राप्त होता है।
—यही अधिदैव और अध्यात्म का रहस्य है।

मंत्रः4-10

स होवाच बालाकिर्यः—
एवैष आदर्शे पुरुषः।
तमहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाच आजातशत्रुः—
मैतद्विदः समवादय।

प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
प्रतिरूपो हैवास्य प्रजायामाजायते,
न अप्रतिरूपः ॥10॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा—
''यह जो दर्पण में दिखाई देता पुरुष है,
इसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया—
''तू इसे भलीभाँति नहीं जानता।
मैं इसे **प्रतिरूप** रूप में उपासता हूँ।''
जो इस ब्रह्म को
प्रतिरूप रूप में जानकर उपासता है,
उसकी संतान भी
सदृश, सौम्य और योग्य होती है—
वह विकृत नहीं होती।

मंत्रः4-11

स होवाच बालाक्यः—
एवैष प्रतिश्रुत्कायां पुरुषस्तमेवाहमुपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
मा एतन्निन्समवादय।
द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते ॥11॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा—
''यह जो प्रतिध्वनि में पुरुष प्रकट होता है,

उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु बोले–
''इसमें मत उलझो।
मैं उसे **द्वितीय-रहित,**
जिससे कोई दूसरा अलग नहीं–
ऐसे ब्रह्म के रूप में उपासता हूँ।''
जो इस प्रकार
अद्वितीय ब्रह्म की उपासना करता है,
वह कभी द्वैत में नहीं फँसता,
दूसरे से दूसरा नहीं बनता–
वह एकरस हो जाता है।

मंत्रः4-12

स होवाच बालाकिर्यः–
एष एव शब्दः पुरुषमन्वेति,
तमेवाहमुपास इति।
तं होवाच आजातशत्रुः–
मैतत्।
असुर इति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते,
न वै स स्वयं नास्य प्रजा
पुराकालात् सम्मोहमेतिति॥12॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा–
''यह जो शब्द है, वह पुरुष का अनुगमन करता है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
आजतशत्रु ने उत्तर दिया–

''नहीं, यह पर्याप्त नहीं।
मैं इसे असुर रूप में उपासता हूँ।''
जो इस प्रकार केवल
शब्द को ही ब्रह्म मानकर उपासना करता है—
न तो वह स्वयं स्पष्टता पाता है,
और न उसकी सन्तान—
वह प्रारम्भ से ही मोह में प्रविष्ट हो जाता है।

मंत्रः4-13

स होवाच बालाकिः—
एष एव छायायां पुरुषः।
तमहं ब्रह्मोपास इति।
तं होवाचाजातशत्रुः—
मा एतद्विदः समवादय।
मृत्युरेव एष इति वा अहमेतमुपासे।
स यो हैतमेवमुपास्ते
न वै स्वयं नास्य प्रजा
पुरा कालात् प्रमीयते ॥13॥

काव्यानुवाद

फिर बोला बालाकि—
छाया में जो पुरुष दीखता है,
उसी को मैं ब्रह्म मान कर पूजता हूँ।
राजा अजातशत्रु ने कहा—
यह ब्रह्म नहीं, यह मृत्यु है।
जो छाया में सत्य खोजे,
वह नश्वरता को ही पूजता है।
ऐसा उपासक

न स्वयं काल से बच पाता है,
न उसकी संतान
मृत्यु के बन्धन से मुक्त होती है।

मंत्रः4-14

स होवाच बालाकिः–
एष एव शारीरः पुरुषः,
तमेवाहमुपास इति।
तं होवाच आजातशत्रुः–
नैतन्मे सम्यग्विदितम्।
प्रजापतिरिति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
प्रजायते प्रजया पशुभिः ॥14॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा–
''यह जो देह में स्थित पुरुष है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया–
''नहीं, बालाकि, इसे ऐसे मत जानो–
यह प्रजापति है,
सृजन की मूल चेतना।''
जो इसे इस रूप में उपासता है,
वह स्वयं सृजनशील हो जाता है–
उसकी संतानें फलती-फूलती हैं,
पशु, धन और जीवन-विस्तार से
उसका संसार परिपूर्ण होता है।
जो देह में स्थित पुरुष को

प्रजापति-ब्रह्म जान लेता है,
वह केवल जीवित नहीं रहता—
वह जीवन को आगे बढ़ाता है,
पीढ़ियों में प्रवाहित करता है।

<u>**मंत्रः4-15**</u>

स होवाच बालाक्य—
एष एव प्राज्ञ आत्मा येनैतत् सुप्तः
स्वप्नमाचरति।
तमेवाहमुपास इति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
मैतत् सम्वादय।
यमो राजेति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
सर्वं ह वै इदं श्रैष्ठ्याय गम्यते॥15॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

बालाकि ने कहा—
यह वही प्राज्ञ आत्मा है
जिससे यह जीव सोते हुए
स्वप्नों का संसार रचता है,
मैं उसी की उपासना करता हूँ।
अजातशत्रु ने कहा—
नहीं, यह पर्याप्त नहीं,
मैं इसे यमराज के रूप में जानता हूँ—
जो न्याय का अधिपति है,
जो सीमा और सत्य का प्रहरी है।

जो इस आत्मा को
यम-स्वरूप में जानकर उपासता है,
वह समस्त अस्तित्व में
श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

मंत्रः4-16

स होवाच बालाकिरथ्य—
एष एव दक्षिणेक्षणः पुरुषः।
तमेवाहमुपास इति।
तं होवाचाजातशत्रुः—
नान्नात्मा विरात्मा
ज्योतिष्ट आत्मेति वा अहमेतमुपास इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
एतेषां सर्वेषामात्मा भवति॥16॥

काव्यानुवाद

बालाकि ने कहा—
''जो दाहिनी दृष्टि में स्थित पुरुष है,
उसी को मैं उपास्य मानता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया—
''वह न अन्न-आत्मा है,
न केवल देह से भिन्न कोई आत्मा,
वह तो ज्योतिर्मय आत्मा है—
मैं उसी रूप में उसकी उपासना करता हूँ।''
जो साधक उसे इस प्रकार जानकर उपासता है,
वह सब आत्माओं का आत्मा बन जाता है,
सबके भीतर वही होकर प्रतिष्ठित हो जाता है।

<u>मंत्रः4-17</u>

स होवाच बालाकिः–
एष एव सव्येक्षन् पुरुषः,
तमेवाहमुपासे इति।
तं होवाच अजातशत्रुः–
मा एतद्विद्विद्वाक्यं समवादय।
सत्यस्यात्मा विद्युत आत्मा
तेजस आत्मेति वा
अहमेतमुपासे इति।
स यो हैतमेवमुपास्ते
एतेषां सर्वेषामात्मा भवति॥17॥

<u>काव्यानुवाद</u>

बालाकि बोले–
''जो यह बाईं ओर दृष्टि करता हुआ पुरुष है,
उसी को मैं ब्रह्म मानकर उपासता हूँ।''
अजातशत्रु ने उत्तर दिया–
''नहीं, इसे यों मत समझो।
मैं उसे सत्य का आत्मा मानता हूँ,
विद्युत्-सा जो चमकता है,
तेजस्वी चेतना का जो मूल है–
उसी को मैं ब्रह्म रूप में उपासता हूँ।''
जो इस प्रकार
उस परम तत्त्व की उपासना करता है,
वह समस्त सत्यों का आधार बन जाता है,
सबके भीतर वही आत्मा होकर विराजता है।

मंत्रः4-18

तत उ ह बालाकी तूष्णीमास।
तं होवाच अजातशत्रुः—
एतावन्नु बालाके इति।
एतावद्धीति होवाच बालाकिः।
तं होवाच अजातशत्रुः—
मिथ्यैव खलु किम् मा संवदिष्ठाः।
ब्रह्म ते ब्रवाणि।
यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता
यस्यैतत्कर्म स वेदितव्यः इति।
तत उ ह बालाकिः समित्पाणिः
प्रत्यचक्रम् उपायानीति।
तं होवाच अजातशत्रुः—
प्रतिलोमरूपमेव स्यात्
यत् क्षत्रियो ब्राह्मणमुपनयीत।
एहि व्येव त्वा ज्ञापयिष्यामि इति।
तं ह पाणावभिपद्य प्रव्राज।
तौ ह सुप्तं पुरुषमीयतुस्तं।
ह अजातशत्रुः आमन्त्रयाञ्चक्रे—
बृहद्पाण्डुरवासा सोमराजन् इति।
स उ ह तूष्णीमेव शिश्ये।
ततो ह एनं यष्ट्या विचिक्षेप।
स तत एव समुत्तस्थौ।
तं होवाच अजातशत्रुः—
क्वैष एतस्मिन्लोके पुरुषोऽशयिष्ट?

क्वैतदभूत्? कुत एतदागादिति?

तदु ह बालाकिर्न विजज्ञौ ॥18॥

<u>**काव्यानुवाद**</u>

तब बालाकि मौन हो गया।
अजातशत्रु ने पूछा—
''बस इतना ही, बालाके?''
उसने कहा—''हाँ, यही।''
अजातशत्रु बोला—
''यह अपूर्ण है, सत्य नहीं।
मैं तुम्हें ब्रह्म का बोध कराऊँ।
हे बालाकि! इन सब 'पुरुष-रूपों' का
जो कर्ता है,
जिससे ये कर्म होते हैं—
वही जानने योग्य है।''
यह सुन बालाकि
समिधा हाथ में लेकर
शिष्य-भाव से लौटा।
अजातशत्रु ने कहा—
''यह तो उलटा क्रम है—
क्षत्रिय ब्राह्मण को दीक्षा दे!
आओ, मैं तुम्हें वही बताऊँ।''
वे दोनों
एक सोए हुए पुरुष के पास गए।
अजातशत्रु ने पुकारा—
''हे श्वेतवस्त्रधारी!

हे सोमराज!''
पर वह न बोला।
तब उसने दण्ड से स्पर्श किया—
और वह पुरुष जाग उठा।
अजातशत्रु ने पूछा—
''जब यह सोया था,
तब यह 'पुरुष' कहाँ था?
कहाँ विलीन हो गया था,
और कहाँ से लौट आया?''
बालाकि
इसका उत्तर न दे सका।

मंत्रः4-19

तं होवाच आजातशत्रुः—
यत्रैष एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्ट,
यत्रैतदभूद् यत एतदागच्छति।
ता नाम हृदयस्य नाड्यः।
हृदयात् पुरीततं अभिप्रतन्वन्ति।
यथा सहस्रधा केशो विपाटितः,
तावदण्व्यः।
पिङ्गलस्य,
नीलस्य,
शुक्लस्य,
कृष्णस्य,
पीतस्य,
लोहितस्येति।

तासु तदा भवति
यदा सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति।
अथास्मिन् प्राण एवैकधा भवति।
तथैनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्येति,
चक्षुः सर्वैरूपैः सहाप्येति,
श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति,
मनः सर्वैर्ध्यायैः सहाप्येति।
स यदा प्रतिबुध्यते
यथोत्तिष्ठतो विस्फुलिङ्गा
विप्रतिष्ठेरन्,
एवमेवैतदात्मनः प्राणाः
यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते।
प्राणेभ्यो देवाः,
देवेभ्यो लोकाः।
तद्यथा क्षुरः
क्षुरधाने हितः स्यात्,
विश्वम्भरो वा
विश्वम्भरकुले।
एवमेवैष प्राज्ञ आत्मा
इदं शरीरमनुप्रविश्य
आ लोमभ्यः
आ नखेभ्यः ॥19॥

काव्यानुवाद

अजातशत्रु ने कहा—
हे बालाकि!
जहाँ यह पुरुष सोया था,

जहाँ वह लीन हुआ,
और जहाँ से वह लौटता है—
उसी को जान।
हृदय से निकलती हैं सूक्ष्म नाड़ियाँ,
पुरीतत् तक फैलती हुई,
जैसे एक केश
हज़ारों सूक्ष्म रेखाओं में विभक्त हो जाए।
नीली, पीली, श्वेत, कृष्ण,
लोहित—
असंख्य रंगों की धाराएँ।
जब मनुष्य गहन निद्रा में होता है,
स्वप्न भी नहीं देखता—
तब केवल **प्राण** ही
एकरूप होकर स्थित रहता है।
उस समय—
वाणी अपने समस्त नामों सहित
उसी में लीन हो जाती है,
नेत्र अपने समस्त रूपों सहित,
कर्ण अपने समस्त शब्दों सहित,
मन अपने समस्त विचारों सहित।
और जब वह जागता है—
तो जैसे अग्नि से
चिंगारियाँ चारों दिशाओं में फैलती हैं,
वैसे ही आत्मा से
प्राण अपने-अपने स्थानों में लौट जाते हैं।
प्राणों से देवता उत्पन्न होते हैं,
देवताओं से लोक।

जैसे उस्तरा
अपने कोष में सुरक्षित रखा हो,
या तलवार
अपने म्यान में स्थित हो—
वैसे ही यह **प्राज्ञ आत्मा**
इस पूरे शरीर में
रोम-रोम तक,
नख-नख तक
व्याप्त होकर स्थित है।

मंत्रः4-20

तमेतमात्मानमेतमात्मनोऽन्ववस्यति।
यथा श्रेणिं स्वाः तद्यथा श्रेणयः स्वैर्भुङ् क्ते,
यथा वा श्रेणिं स्वा भुञ्जते,
एवमेव एष प्राज्ञ आत्मा एतैरात्मभिर्भुङ् क्ते।
यथा श्रेणी स्वैरात्मानमेत आत्मनोऽन्ववस्यन्ति।
यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न विजज्ञौ,
तावदेनमसुरा अभिभूवुः।
स यदा विजज्ञौ,
अथ हत्वा असुरान् अविजित्य
सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं
स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति।
तथैव एवं विद्वान्
सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं
स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति।
य एवं वेद, य एवं वेद ॥20॥

काव्यानुवाद

वह प्राज्ञ आत्मा
अपने ही आत्म-तत्त्व का अनुगमन करता है—
जैसे कोई श्रेष्ठ नायक
अपनी श्रेणियों के साथ सुख भोगता है,
जैसे श्रेणियाँ
अपने ही स्वामी में तृप्त होती हैं।
उसी प्रकार यह प्राज्ञ आत्मा
इन सब आत्म-शक्तियों के साथ
स्वयं में ही रमण करता है।
जब तक इन्द्र
इस आत्म-तत्त्व को नहीं जानता था,
तब तक असुर उसे जीतते रहे।
पर जिस क्षण
उसने आत्मा को जान लिया—
असुरों को परास्त कर
वह समस्त प्राणियों में
श्रेष्ठता, स्वराज्य और आधिपत्य को प्राप्त हुआ।
वैसे ही
जो यह आत्म-तत्त्व जान लेता है,
वह भी सब प्राणियों में
श्रेष्ठता, स्वराज्य और प्रभुत्व पाता है।
जो इसे जानता है—
वह वास्तव में जान लेता है।

मंत्रः4-21

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्।
आविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः
श्रुतं मे मा प्रहासीः।
अनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाज़्यृतं वदिष्यामि।
सत्यं वदिष्यामि।
तन्मामवतु।
तद्वक्तारमवतु।
अवतु मामवतु वक्तारम्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥21॥

काव्यानुवाद

मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो,
मेरा मन वाणी में अविचल स्थित हो।
हे दिव्य वाणी! मुझमें प्रकट हो,
मेरी चेतना को प्रकाशित कर।
हे वेद! तू मेरा सहारा बन,
मेरी श्रुति मुझसे कभी न छूटे।
इस अध्ययन के पुण्य से
मैं दिन-रात ऋत के साथ जुड़ा रहूँ।
मैं ऋत का उच्चारण करूँ,
मैं सत्य का ही कथन करूँ।
वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे,

वह मेरे वक्ता की रक्षा करे।
वह मेरी रक्षा करे,
वह मेरे वक्ता की रक्षा करे।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ ॐ इति कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् ॥

परिचय

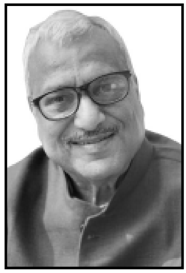

सुरेश चौधरी 'इंदु'

पिता का नाम : स्व. भोलाराम चौधरी

माता का नाम : श्रीमती दुर्गावती चौधरी

जन्म स्थान : जमशेदपुर (वर्तमान में झारखंड)

जन्म तिथि : 14 जुलाई, 1952

शिक्षा : विज्ञान में स्नातक, चार्टर्ड एकाउंटेंट्स, एकोल सुपेरियारे रोबर्ट दी सौबोर्न फ्रांस द्वारा पीएचडी (अर्थ एवं वित्त विश्लेषण) में स्वीकृत मानद; (BSc, FCA, PhD) आरंभिक शिक्षा जमशेदपुर भारतीय मोडल स्कूल कक्षा 7 तक, फिर ADLS हाईस्कूल में मैट्रिक 1963-1967, फिर जमशेदपुर को-ऑपरेटिव कॉलेज से विज्ञान में स्नातक (1967-1971)। इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स कोलकाता (दास एंड प्रसाद) से चार्टर्ड (1972-1976)।

जीवन वृतांत : 1977-1982, उषा अलॉयस एंड स्टील्स में मैनेजर फाइनेंस के रूप में कार्य। 1982-83 बिहार अलॉइ स्टील्स लिमिटेड में वाइस प्रेसीडेंट कमर्शियल। तत्पश्चात् निजी इस्पात एवं इस्पात से संबंधित कुल 18 कारखाने बड़ोदरा, गोधरा, मेघनगर, जमशेदपुर, चांडिल, बड़बिल, कोलकाता में लगाये। 2008 से 2011 तक आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य किया।

लेखन में रूचि 2011 से स्वास्थ्य के चलते। सभी कार्य छोड़कर केवल अध्ययन एवं लेखन की ओर झुकाव, तब से नियमित लेखन एवं शोध कार्य। लेखन में विशेष कर-हाइकु, मुक्त छंद, छंद मुक्त, छंद, बाल कविता, आलेख, आध्यात्म, शोध वैदिक सनातन दर्शन एवं आर्थिक विषय पर। भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखों एवं कविताओं का नियमित प्रकाशन, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉग अकेदेमिया, एडु में नियमित लेख प्रकाशन।

'ताजा टीवी' एवं 'दूरदर्शन' पर समय-समय पर चर्चाओं में भागीदारी।

अनुवादित कार्य का विवरण

1.1 श्री दुर्गतिविनाशनी : श्री दुर्गा सप्तशती का भावानुवाद छंद मुक्त लयबद्ध जिसकी विवेचना महामंडलेश्वर साक्षी जी महाराज एवं प्रसिद्ध साहित्य समीक्षक श्री वीरेन्द्र गोस्वामी, जयपुर ने लिखी। पुस्तक के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

1.2 प्रांजलि (भाग-2) : श्रीमद्भागवत एवं वेदों के 101 सूक्तों पर आधारित छंद मुक्त प्रार्थनाएँ, समीक्षा डॉ. उम्मेद सिंह बैद, पुस्तक में प्रार्थना के साथ उधृत श्लाकों की संख्या भी दी गयी है।

1.3 वेद से वेदांत तक-मूल पाठ सहित : 9 उपनिषद : ईशोपनिषद्, केन उपनिषद, कठोपनिषद, प्रश्न उपनिषद, मंडूक उनिपद, मांडूक्य उपनिषद, ऐतरिय उपनिषद, तैतरीय उपनिषद, श्वेताश्वेतर उपनिषद का छंद मुक्त काव्यात्मक अनुवाद, पुरुष सूक्त एवं नासदीय सूक्त का छंदोबद्ध अनुवाद।

समीक्षा : अंशु त्रिपाठी, प्रसिद्ध कवयित्री, डॉ. अल्पना गोस्वामी, विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग।

1.4 आदिशंकर रसमाधुरी :

मूल संस्कृत पाठ के साथ : आदि शंकराचार्य के निम्नलिखित स्त्रोतों का छंदोबद्ध अनुवाद

1. भजगोविंद : चौपाई एवं दोहों में अनुवाद
2. महिषासुर मर्दिनी : कनक मंजरी छंद
3. देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् : हरिगीतिका छंद में
4. निर्वाण षटकम : कुकुम्भ छंद में
5. श्री गंगा स्त्रोत : लावणी छंद में अनुवाद
6. कनकधारा स्त्रोत : मूल छंद में

आशीर्वचन प्रसिद्ध गौ भक्त संत एवं रामजन्मभूमि के प्रमुख आचार्य धर्मेन्द्र द्वारा।

1.5 हर हर महादेव : मूल संस्कृत पाठ के साथ मंत्रों एवं स्त्रोतों का छंदोबद्ध अनुवाद :
विषय की विषद व्याख्या स्व-लिखित

1. शिव स्तुति-स्व-रचित संस्कृत में
2. महामृत्युंजय मंत्र : धनाक्षरी में
3. शिव पंचार मंत्र : चतुष्पदी में
4. द्वादश ज्योर्तिलिंग : चतुष्पदी में
5. रावण रचित शिवताण्डवस्तोत्रज़

यह स्त्रोत अनंग शेखर छंद में लिखा गया है, इसे इसी छंद में अनुवाद किया है।

6. श्री शिव महिम्न स्तोत्र : चतुष्पदी एवं लावणी छंद
7. रूद्राष्टक (तुलसीदास रचित) : चतुष्पदी में
8. शिव मानस पूजा स्त्रोत : षष्टपदी में आशीर्वचन आचार्य धर्मेन्द्र जी एवं बालव्यास जी द्वारा

1.6 सुभाषितम : मूल संस्कृत श्लोकों सहित भारतीय नीतिशास्त्र एवं विभिन्न सुभाषित 108-108 श्लोकों की दो माला का दोहों में अनुवाद।

1.7 गोपी गीत : यूँ तो गोपी गीत 19 श्लोकों का एक गीत जो इंदिरा छंद में लिखा गया है, परंतु यह गहन शोध का विषय है एवं प्रत्येक श्लोक अध्यात्म की ऊँचाई की छूता दृष्टिगत है। इसका अनुवाद भी इंदिरा छंद में ही किया है और विस्तार और विस्तृत भाष्य विभिन्न छंदों में है। यह एक खंड काव्य है।

1.8 सुर तरिंगिणी : देव सरिता माँ गंगा की समस्त कहानी एवं संस्कृत मूल के साथ गंगा लहरी, गंगा स्त्रोत, गंगाष्टकम (कालिदास, आदिशंकर, वाल्मीकि द्वारा रचित) का छंदों में अनुवाद, गंगा का अवतरण हुआ है तो क्या हुआ होगा व्यवहारिक दृष्टिकोण।

1.9 अप्रकाशित : भागवत में वर्णित अनेक गीतों एवं स्तुतियों जैसे, भ्रमर गीत, वेणु गीत, वर्षा गीत, कुन्ती द्वारा स्तुति, गर्भ स्तुति, गज मोक्ष मंत्र आदि का मूल संस्कृत पाठ सहित विभिन्न छंदों में अनुवाद। **विवरण इस प्रकार है :-**

क्रम	सूक्त/गीत/स्तुति वेदों से	मूल छंद	अनुवाद का छंद
1.	पुरुष सूक्त	निचृदनुष्टुप	चतुष्पदी
2.	नाशदीय सूक्त	नीचृत्रिष्टुप	चतुष्पदी
3.	हिरण्यगर्भ सूक्त	त्रिषटुप	लावणी
4.	संज्ञान सूक्त	विराननुष्टुप	गीतिका
5.	श्री सूक्त	महा जगति	हरिगीतिका
	भागवत के गीत/स्तुति		
6.	भ्रमर गीत	शार्दूलविक्रीडीत	हरिगीतिका
7.	वर्षा गीत	वसांततालिका	दोहा-चौपाई
8.	यूगल गीत	स्वागता	स्वागता
9.	वेणु गीत	वंशस्थ	हरिगीतिका
10.	प्रणय गीत	उपेन्द्रवज्रा	कुकुम्भ
11.	धुन गीत	वसंततालिका	कुकुम्भ
12.	गजेन्द्र मोक्ष	स्तरगधरा	दोहा-चौपाई
13.	कुंती स्तुति		चतुष्पदी
14.	वसुदेव स्तुति		चतुष्पदी
15.	गर्भ स्तुति		धनाक्षरी
16.	चतुर्शलोकी भागवत		धनाक्षरी
17.	अन्य: कृष्णाष्टकम	पैंचचामर	पैंचचामर

अन्य भाषा से अनुवाद

2.10 अड़सठ शरद रवीन्द्र की शरण : रवीन्द्र के मूल 68 बंगला गीतों को देवनागरी में लिखकर अनुवाद प्रथम अनुवाद है, जो छंदबद्ध है। अभी तक जितने भी अनुवाद हुए हैं, वे सब छंद मुक्त अतुकांत या तुकांत अनुवाद ही हुए हैं। इसकी समीक्षा प.बंगाल के पूर्व राज्यपाल केशरीनाथ त्रिपाठी जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय की विभागाध्यक्ष डॉ. राजश्री शुक्ल, प.बंगाल शिक्षण विश्वविद्यालय की उपकुलपति डॉ. सोमा बंदोपाध्याय एवं पं. सुरेश नीरव ने की है।

अध्यात्म एवं धर्म पर आधारित पुस्तकें

3.11 भारतीय दर्शन : भारत के मुक्त 6 दर्शनों का परिचय। इसमें सनातन धर्म के आस्तिक दर्शनों की प्रारंभिक जानकारी है।

3.12 भारत की अन्य दर्शन : भारत के अन्य दर्शन जिन्हें नास्तिक दर्शन कहा गया है। उनके बारे में प्रारंभिक जानकारी, ये दर्शन जैसे चवार्क, बुद्ध, जैन दर्शन हैं।

3.13 वेदान्त : आदि शंकराचार्य द्वारा चार धामों के चार महावाक्य की विस्तृत चर्चा, जिसकी भूमिका लिखी है दर्शन के महाज्ञानी डॉ. उम्मेद सिंह वैद ने।

3.14 श्रीमद्भागवत महापुराण–परिचय एवं समीक्षा : श्रीमद्भागवत को पंचम वेद भी कहा गया है पर आजकल हर गली–मोहल्ले में हम भागवत के पाठ पर फिल्मी तर्ज के गानों पर लिखे भजनों पर नृत्य देखते हैं। एक व्यवहारिक दृष्टि से भागवत की समीक्षा की गई है, इसमें भागवत कथा के बारे में नहीं बल्कि उसके लिखने के उद्देश्य के बारे में बताया गया है।

3.15 वेदों का परिचय एवं समीक्षा : चार वेद क्या है। इनमें क्या विषय वस्तु है। इनका भाष्य किसने–किसने लिखा है। उन भाष्यों में क्या है। समुचित जानकारी जिसे एक हिन्दू को ही नहीं बल्कि विश्व के हर प्राणी को जानना आवश्यक है।

3.16 मनुस्मृति–परिचय एवं समीक्षा : कालांतर में मनुस्मृति को अभिशाप घोषित कर दिया गया है, जबकि यह हर भारतीय की और भारतीय संस्कृति की रूलबुक है। इसमें जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों के निर्वहन का नियम बताया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेक्षप मंत्रों एवं शंकाओं का निवारण करने का प्रयत्न किया गया है।

3.17 भ्रम और भ्रांतियाँ : सनातन धर्म में व्याप्त भ्रम जैसे दलित का शोषण 5000 वर्षों से हो रहा है इत्यादि का तथ्यपरक उत्तर, कई भ्रांतियाँ दूर होंगी इसे पढ़ने से।

शोध पुस्तक

3.18 चमत्कृत करती भाषा संस्कृत : संस्कृत कितनी चमत्कारी भाषा है, उसके हर पहलू पर क्रमशः आलेख लिखे थे, उनका संग्रह इस पुस्तक में है।

काव्य

4.19 तिमिर ढलेगा : आशाओं को जागृत करती 101 प्रेरक कविताओं की पुस्तक जिसका तीसरा संस्करण छप कर आ चुका है।

4.20 बुलबुले–सी जिंदगी : 101 छंद मुक्त कविताएँ जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लिखी हुई, जिसकी समीक्षा प्रसिद्ध गीतकार रमेन्द्र मोहन त्रिपाठी एवं प्रसिद्ध लेखक शिखर चंद जैन ने लिखी है, पुस्तक का दूसरा संस्करण उपलब्ध है।

4.21 कुछ माणिक कुछ मोती : प्रांजल हिन्दी में रचित छंदबद्ध कविताएँ अलग–अलग विषय पर क्रमबद्ध, समीक्षा प्रख्यात गीतकार श्री विष्णु सक्सेना, श्रीमती सरिता शर्मा एवं प्रख्यात साहित्यकार डॉ. प्रेम शंकर त्रिपाठी ने लिखी हैं, पुस्तक आर्ट पेपर पर बहुरंगी है।

4.22 प्रांजलि : जीवन दर्शन पर आधारित 101 प्रार्थनाएँ, छंद मुक्त, समीक्षा वीरेन्द्र गोस्वामी, सर्वेश अस्थाना एवं भागवताचार्य पं. श्रीकांत शर्मा बालव्यास जी ने लिखी है। पुस्तक के दो संस्करण आ चुके हैं।

बाल गीत

4.23 आसमान को छू लें : जयपुर के कल्याण सिंह शेखावत के संग यह बाल गीत की पुस्तक बहुरंगी बड़ी साइज में बालकों को मोहती बनी है, जिसकी समीक्षा प्रसिद्ध बाल लेखक संजय जायसवाल 'संजय' एवं आकाशवाणी, कोलकाता की उद्घोषिका सविता पोद्दार ने लिखी है।

अन्य काव्य

4.24 हे माँ : कुल देवी शक्ति स्वरूप माँ जीण भवानी को समर्पित पुस्तिका जिसमें संस्कृत स्तुति से आरंभ कर के 18 सनातन छंदों की रचनाएँ लिखी गई है।

4.25 माँ : मेरी जननी को हर वर्ष काव्याभ्ली देता रहा हूँ, उनके देहावसान पर समर्पित पुस्तिका, जिसमें 20 गीत छंद बद्ध एवं छंद मुक्त दोनों है।

4.26 शून्य से शून्य तक : दृश्य बनाते हुए 81 कविताएं जो जीवन के विभिन्न आयामों पर लिखी गई है, ये कविताएं छंद मुक्त ले बद्ध है।

विविध

5.27 मूल्यांकन : भारतीय अर्थव्यवस्था का आंकलन 2019 में इसे स्व. विलास राव जी के सहयोग से लिखा था। भारत अर्थव्यवस्था के हर पहलू पर गहन चिंतन आंकड़ों के साथ एवं सुझाव प्रधानमंत्री कार्यालय भेजे गए, जिसमें कई सुझावों को मंजूरी मिली।

5.28 भारत की आर्थिक स्थिति में क्या उचित (प्रकाशनाधीन) : समय-समय पर भारतीय अर्थव्यवस्था पर लेख लिखता रहा हूँ। नोटबंदी का सुझाव भी देने वाले कुछ लोगों में से मैं भी था। इन लेखों को एकत्रित कर पुस्तक का रूप दिया गया है।

5.29 भारतीय काव्य संहिता : भारत में प्रचलित सभी काव्य विधाओं का विवरण लिखने की विधा कैसे लिखें, किन बातों का ध्यान रखें-छंद, छंद मुक्त, मुक्त छंद, हाइकु, गीतिका, गज़ल इत्यादि।

यात्रा संस्मरण

5.30 ऐक्सडेनल टूर इन हाइबेरनेसन : यात्रा संस्मरण, लेख की अनियोजित यात्रा के 7 माह जिसमें उसने पूरे भारत का भ्रमण किया। उन भ्रमणों का रोचक विवरण ललित निबंध रूप में। पुस्तक निखिल प्रकाशन आगरा से प्रकाशित।

संवत 2081 में प्रकाशित

5.31 : इंदु प्रभा – छंद बद्ध कविताओं का संग्रह जिन्हें विषयानुसार अनुक्रमित किया गया है।

5.32 : मैं जीवन दंड विधान हूं-नवगीत एवं छंद वद्ध गीतों का संग्रह

5.33 : लघु उपनिषद त्रयी (मांडूक्य, ईश, केन उपनिषद का व्यावहारिक अर्थों सहित भाष्य मूल श्लोक के साथ)

5.34 : इंदु पदावली (कृष्ण भक्ति पद) : 92 कृष्ण भक्ति के एवं 21 राम भक्ति के पद। पद जो एक लुप्त होती विधा है, उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास।

5.35 : इंदु पदावली (भाग 2) निर्गुण पद : कबीर, रैदास, दादू इत्यादि संतों की परंपरा को बढ़ाते हुए 95 निर्गुण पद।

5.36 : दोहांजलि, निर्गुण सगुण एवं नीति परक 711 दोहों का अनुपम संग्रह जिसमें 51 दोहे मीतू कनोडिया जी के सौजन्य से समाहित किये गए हैं।

कुछ प्रमुख सम्मान :

1. भारत गौरव (इस्पात में अभूतपूर्व कार्य हेतु तत्कालीन इस्पात मंत्री के कर-कमलों से दिल्ली की एक स्वयंसेवी संस्था द्वारा।)
2. केंद्रीय सचिवालय द्वारा राजभाषा गौरव पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी जी द्वारा।
3. विद्या वाचस्पति की मानद उपाधि विक्रमशिला हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा।

4. साहित्य शिरोमणि दामोदरदास चतुर्वेदी साहित्य शिखर सम्मान 2021 एवं 2022 (पूर्व में यह सम्मान अटल बिहारी वाजपेयी, पंडित गोपालदास नीरज, उदप्ताप सिंह जी इत्यादि को मिला है।)
5. श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार साहित्य सम्मान, अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन पूर्वी सिंहभूम शाखा द्वारा।
6. साहित्य मार्तण्ड सम्मान प्रसिद्ध संस्था बिहार हिंदी सम्मेलनी, पटना द्वारा।
7. हिंदी साहित्य शिरोमणि मानद सम्मान, साहित्य मण्डल श्रीनाथ द्वारा।
8. 'हिंदी सेवा सम्मान' श्रवण संस्था व शोध संस्थान, हरिद्वार द्वारा।
9. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' साहित्य रत्न सम्मान सह नगद राशि प्रख्यात संस्था अभ्युदय द्वारा।
10. मानद पीएचडी वैदिक हिंदी साहित्य में लेगॉस यूनिवर्सिटी की शोध इकाई 'इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बिजनस मैनिज्मन्ट एंड रेसर्च टेक्नोलॉजी' द्वारा।

विशेष उपलब्धि : 1116 दिनों में 1000 भजन लिखकर विश्व कीर्तिमान स्थापित किया जो कि इंटरनेशनल बुक ऑफ रेकॉर्ड्र्स द्वारा प्रकाशित और प्रमाणित किया गया।

साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधि : अंतर्राष्ट्रीय संस्था रचनाकार (शुक्तिका इंडिया फाउंडेशन का एक प्रकल्प) के संस्थापक सभापति, संस्था प्रति वर्ष साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु दस व्यक्तियों को सम्मानित करती है एवं नगद राशि भी भेंट करती है।

शुक्तिका इंडिया फाउंडेशन के संस्थापक न्यासी जो कैंसर पीड़ित असहाय रोगियों के नि:शुल्क चिकित्सा की सुविधा प्रदान करती है।